विमोचन समारोह

आदि

भारती

मासिक पत्रिका

सती-प्रथा बदला ? अथवा लाबियों का षड़यन्त्र ?

गीता एक अन्तर्द्वन्द ? लव-कुश की कहानी

आदि धर्मः सनातन एक युगान्तर कथा ?

वेद

भाष्य

एक पूर्ण पुरूष पत्रिका

❁ आदि भारती ❁

(अध्यात्मिक, सामाजिक, सम सामयिक,

मासिक

पूर्ण पुरुष पत्रिका

स्थापना अंक — मकर सन्क्रान्ति १६८६

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक एवं महा प्रबन्धक — प० पू० योगीराज श्री स्वामी सनातन श्री पीठाधीश्वर
श्री सनातन पीठ प्रकाशन
श्री सनातन आश्रम, कुर्सी रोड,
लखनऊ–७

मुद्रक :- समुद्रक प्रिन्टर्स
श्री सनातन आश्रम, कुर्सी रोड, लखनऊ–७

सम्पादक :– मण्डल — श्री स्वामी सनातन श्रुति
श्री हरिनाथ प्रसाद वर्मा
श्री लक्ष्मन दास कपूर

मूल्य–एक प्रति	११ रु० (ग्यारह रुपये)
वार्षिक	१०१ रु० (एक सौ एक रुपये)
आजीवन	११०० रु० (ग्यारह सौ रुपये)
प्रकाशित पुस्तकों की संख्या	५०००

विज्ञापन व्यवस्था कवर पृष्ठों के अतिरिक्त:—

१–पूरा पेंज एक बार	१५०० रु०	वार्षिक	१२,००० रु०
२–आधा ,, ,, ,,	१००० रु०	वार्षिक	८,००० रु०
३–चौथाई ,, ,, ,,	६०० रु०	वार्षिक	६,००० रु०

विज्ञापन की सम्पूर्ण राशि आग्रिम देय होगी।

धन क्रास ड्राफ्ट अथवा क्रास/एकाउन्ट पेई चेक के द्वारा भेजा जा सकेगा।

कृपया मनी आर्डर अथवा पोस्टल आर्डर से धन नहीं भेजे।

विषय-सूचि

सम्पादकीय

परम पूज्य योगि राज अनन्त श्री विभूषित स्वामी सनातन श्री महाराज की कृपा से चिर प्रतीक्षित पत्रिका आपके हाथों में है। एक पूर्ण पुरूष पत्रिका। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के सर्वांग जीवन का स्पष्ट सन्देह रहित दर्शन है। ज्ञान, विज्ञान, अध्यात्म समाज, मानवीय मूल्य और सचराचर का सरल, सरस, स्पष्ट एवं मनोहार दर्शन है

आपके पूर्ण सहयोग की आकांक्षाओं के साथ हम आशा करते हैं कि आप अपने विचार, सुझाव द्वारा हमारा मार्ग दर्शन करते रहेंगे। हमारी आंतरिक इच्छा है कि आदि भारती आपकी अपनी पत्रिका बने। पत्रिका आपकी ही है। कृपा पूर्वक अपनाये।

सम्पादक

सरस्वती वन्दना-छन्द (सुश्री स्नेहलता "स्नेह")

वीणा-पाणि ऐसा वरदान मुझे दीजै आज,
शब्द-शब्द से उतारूँ मैं तुम्हारी आरती ।
कामना के फूलों से पिन्हाऊँ हार उर-बीच,
भावना की पुष्प गंध से सवारूँ भारती ।।
चरणों पे चाव भरा चन्दन चढ़ाऊँ और,
बन्दन में हृदय का नन्दन उघारती ।
कंचन की वेदी भाल, हीरक के बिछुओं से,
छन्द-मयी पायल चरण को दुलारती ।।

(2)

मन रहे तेरा मातु, तन रहे तेरा अम्ब,
ज्ञान-पंथ पै तिहारे नित्य चलती रहूं ।
मांगू तो तुझी से मातु, पाऊँ तो तुझी से अम्ब,
और किसी दानी, दाता से मैं डरती रहूं ।।
दृगों मैं समाई रहे सदा ज्योति तेरी, मेरी,
सांस-सांस ऐसे प्रभुताई फलती रहे ।
बीच भव-सागर में छोड़ नहीं देना हाथ,
तेरा ही सहारे लिये नाव चलती रहे ।।

(3)

ऐसी ही दया की दृष्टि, बृष्टि करूँ छन्दनं की,
बन्दन में शब्द-शब्द विरद का ज्ञान हो ।
ऐसी ही हमारी मति, प्रेम-भक्ति-युक्त मन,
तन-शक्ति, भुक्ति, मुक्ति, चरणों का ध्यान हो ।।
श्रुति, वेद-शास्त्र, उपनिषदों, पुराणों मध्य,
तूही तो विराजै अम्ब ज्ञान में सुजान हो ।
ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, पंचभूत प्राण-मय,
चर अरु अचर की तुम्हीं पहिचान हो ।।

(4)

तेरी ही विभूति से भरा है कलाओं का घर,
अम्बर से धरती को देती वर ज्ञान हो ।
कोई कवि, कोई चित्रकार, मूर्तिकार कोई विद्यमान,
कृति-कृतिकार के तुम्हीं तो विद्यमान हो ।।
गान-तान और नृत्य, नाद्य तेरे ही विधान,
प्रणय-प्रदर्शन की तुम्हीं पहिचान हो ।
लास्य और ताण्डव की शक्ति तू अखण्ड देवि,
तू ही सृष्टि, सरस, सहज मुस्कान हो ।।

◆★◆★◆★◆

सनातन--वाणी —स्वामी सनातन श्री

['वेदोऽखिलो धर्ममूलोहि' सनातन धर्म,आत्मधर्म की प्राचीनतम उपलब्धि वेद, ब्रह्माण्ड व्यापी प्रकृति एवं पुरुष के मात्र धर्म का प्रतिपादन करता है। प्रकृति और पुरुष के नित्य आत्म धर्म के दृष्टा दिव्य योगी स्वामी सनातन श्री महाराज की तपः पूत छत्रछाया में बैठकर स्थानीय सिद्धनाथ मन्दिर में प्रत्येक शनिवार को वेद पर तत्वगर्भित प्रवचन सुनने का परम सौभाग्य भक्तों को मिला।

अपौरूषेय वेद की गहनता को, महाप्रभु की चिररहस्यमयी वाणी ने इतना सरस, इतना मोहक तथा इतना हृदयग्राही बना दिया कि भक्त समुदाय मूक स्तब्ध सुनता रहा उन सूक्ष्म, विस्मयकारी वेद रहस्यों को और महाप्रभु सुनाते रहे एक युगदृष्टा की भाँति ऋग्वेद की पावन, स्निग्ध एवं रहस्यमयी ऋचाओं का अनुपम ज्ञान। "ऋषयः मन्त्र-दृष्टारः"

यह महाराज श्री की असीम कृपा का ही परिणाम है कि भक्तों की प्रार्थना से ऋग्वेद पर उनके अमृतमय प्रवचनों को "सनातन वाणी" नाम से क्रमबुद्ध पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की दयापूर्ण अनुमति मिली। प्रस्तुत है वेद भाष्य धारा वाहिक क्रम में !]

—सम्पादक

ऋग्वेद प्रवचन प्रथम मण्डल : प्रथम सूक्ति

भगवान सूर्य उत्तरायण हुए, वेदव्यास का तप पूर्ण हुआ। नेत्र खुले और सन्मुख भगवान गणपति खड़े थे। वेदव्यास ने गणपति की स्तुति एवं अर्चना की। उपरान्त गणपति ने अपने आवाहन का कारण पूछा।

"भगवन! परमेश्वर के सृष्टि, प्रलय मोक्ष था धर्म आदि गूढ़ तत्वों का स्पष्टीकरण चाहता हूँ। महाप्रभु ! प्रत्येक जीव के मन में प्रश्न उठता है कि मैं उत्पन्न क्यों हुआ ? मैं मरता क्यों हूँ ? मैं मरकर कहाँ जाता हूँ ? मेरा जन्म किसलिए हुआ ? परमेश्वर क्या हैं तथा मैं क्या हूँ..........?"

भगवान गणपति ने समझाया.........."क्षीर सागर में शेष शयन करते हुए महाविष्णु के समक्ष देवताओं और ऋषियों ने प्रकट होकर सृष्टा की स्तुति की और उपरान्त प्रार्थना किया कि महाप्रभु ! लोक-लोकान्तरों में अज्ञान व्याप्त होता जा रहा है। सृष्टि लीला का रहस्य लुप्तप्राय हो चुका है..........पाप की छाया सर्वत्र व्याप्त है। मनुष्य स्वयं को, निज धर्म को तथा जीवन के लक्ष्य को नहीं जान पा रहा है-----।

-----हे त्रैलोकेश्वर ! हमने भी दीर्घकाल से आप की लीला का आनन्द नहीं लिया है। आपसे प्रार्थना है कि धरती के भार को कम करने हेतु, सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय के रहस्यों के अनावरण हेतु तथा मोक्ष मार्ग और धर्म के स्पष्टीकरण हेतु आप भू-मण्डल पर अवतरित हों-----।"

सृष्टा ने कहा, "हे देवगण एवं महान ऋषियों ! आप सब सृष्टि यज्ञ का आवाहन करो। यज्ञों द्वारा उत्पन्न, नाना देहों को धारण कर भूमण्डल पर लीला का आनन्द लेने

सनातन--वाणी

—स्वामी सनातन श्री

['वेदोऽखिलो धर्ममूलोहि' सनातन धर्म,आत्मधर्म की प्राचीनतम उपलब्धि वेद, ब्रह्माण्ड व्यापी प्रकृति एवं पुरुष के मात्र धर्म का प्रतिपादन करता है। प्रकृति और पुरुष के नित्य आत्म धर्म के दृष्टा दिव्य योगी स्वामी सनातन श्री महाराज की तपः पूत छत्रछाया में बैठकर स्थानीय सिद्धनाथ मन्दिर में प्रत्येक शनिवार को वेद पर तत्वगर्भित प्रवचन सुनने का परम सौभाग्य भक्तों को मिला।

अपौरूषेय वेद की गहनता को, महाप्रभु की चिररहस्यमयी वाणी ने इतना सरस, इतना मोहक तथा इतना हृदयग्राही बना दिया कि भक्त समुदाय मूक स्तब्ध सुनता रहा उन सूक्ष्म, विस्मयकारी वेद रहस्यों को और महाप्रभु सुनाते रहे एक युगदृष्टा की भाँति ऋग्वेद की पावन, स्निग्ध एवं रहस्यमयी ऋचाओं का अनुपम ज्ञान। "ऋषयः मन्त्र-दृष्टारः"

यह महाराज श्री की असीम कृपा का ही परिणाम है कि भक्तों की प्रार्थना से ऋग्वेद पर उनके अमृतमय प्रवचनों को "सनातन वाणी" नाम से क्रमबुद्ध पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की दयापूर्ण अनुमति मिली। प्रस्तुत है वेद भाष्य धारा वाहिक क्रम में !]

—सम्पादक

ऋग्वेद प्रवचन

प्रथम मण्डल : प्रथम सूक्ति

भगवान सूर्य उत्तरायण हुए, वेदव्यास का तप पूर्ण हुआ। नेत्र खुले और सन्मुख भगवान गणपति खड़े थे। वेदव्यास ने गणपति की स्तुति एवं अर्चना की। उपरान्त गणपति ने अपने आवाहन का कारण पूछा।

"भगवन! परमेश्वर के सृष्टि, प्रलय मोक्ष था धर्म आदि गूढ़ तत्वों का स्पष्टीकरण चाहता हूँ। महाप्रभु ! प्रत्येक जीव के मन में प्रश्न उठता है कि मैं उत्पन्न क्यों हुआ ? मैं मरता क्यों हूँ ? मैं मरकर कहाँ जाता हूँ ? मेरा जन्म किसलिए हुआ ? परमेश्वर क्या हैं तथा मैं क्या हूँ..........?"

भगवान गणपति ने समझाया..........."क्षीर सागर में शेष शयन करते हुए महाविष्णु के समक्ष देवताओं और ऋषियों ने प्रकट होकर सृष्टा की स्तुति की और उपरान्त प्रार्थना किया कि महाप्रभु ! लोक-लोकान्तरों में अज्ञान व्याप्त होता जा रहा है। सृष्टि लीला का रहस्य लुप्तप्राय हो चुका है..........पाप की छाया सर्वत्र व्याप्त है। मनुष्य स्वयं को, निज धर्म को तथा जीवन के लक्ष्य को नहीं जान पा रहा है-----।

-----हे त्रलोकेश्वर ! हमने भी दीर्घकाल से आप की लीला का आनन्द नहीं लिया है। आपसे प्रार्थना है कि धरती के भार को कम करने हेतु, सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय के रहस्यों के अनावरण हेतु तथा मोक्ष मार्ग और धर्म के स्पष्टीकरण हेतु आप भू-मण्डल पर अवतरित हों-----।"

सृष्टा ने कहा, "हे देवगण एवं महान ऋषियों ! आप सब सृष्टि यज्ञ का आवाहन करो। यज्ञों द्वारा उत्पन्न, नाना देहों को धारण कर भूमण्डल पर लीला का आनन्द लेने

हेतु अलौकिक जन्म धारण करो। उसी यज्ञ के द्वारा मैं भी देह धारण कर प्रकट हो जाऊँगा तब आप मेरी लीला का आनन्द ले सकेंगे। भक्तगण लीला के रहस्यों को जानकर जीवन के लक्ष्य का निर्धारण कर सकेंगे। विद्वान उत्पत्ति और प्रलय के रहस्यों को लीला द्वारा जानकर मोक्ष मार्ग को स्पष्ट कर सकेंगे……।"

देवों ने प्रार्थना की, "भगवन्! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है परन्तु हे देवाधिदेव! आपकी माया बहुत गहन है। मृत्युलोक में जीव रूह में प्रकट हुए हम सब माया के द्वारा भटका दिये जावेंगे। हमारा देवज्ञान तो हमारे साथ जावेगा नहीं; क्योंकि गर्भ में प्रवेश करते ही पिछला सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो जावेगा, ऐसी स्थिति में निश्चय ही हम माया द्वारा भ्रमित हो जावेंगे। हमारा उद्धार कैसे होगा ......?"

पूरुषोत्तम ने कहा, 'आप भयभीत न हों। जब आप जीव रूप में प्रकट होंगे, तब मैं प्रत्येक के साथ आत्मा होकर प्रत्येक देह में अवतरित होऊँगा। जब भी माया द्वारा आप भटकाये जावें, आप मुझसे (आत्मा) अद्वैत कर पुनः क्षीरसागर लौट सकेंगे ……।"

देवों ने कहा, "भनवन्! इस देवयोनि में आपके नित्य समीप्य में रहते हुए भी हम माया से भयभीत रहते है; तब जब जीव रूप में हम प्रकट होंगे तो आप से (आत्मा) अद्वैत करना तो अति कठिन होगा। सारी इन्द्रियों के वहिर्मुखी होने से जीव तो बाहर ही बाहर भटकेगा, आप तक पहुंचेगा कैसे ? हे! ………?'

……"आप धैर्य धारण करें", महाविष्णु ने कहा--"मैं बारम्बार नाना अवतार लेकर, नाना योनियो में प्रकट होकर इन्द्रियों के द्वारा भी आत्मा की ओर आप सबको निरन्तर प्रेरित करता रहूंगा। इस प्रकार मैं आत्मा होकर आपके साथ रहूंगा तथा वाह्य रूप से भी लीलाओं द्वारा ………"

"…हे महाविष्णु! जीव योनियों से हमारा छुटकारा कैसे होगा ?

"…जिस यज्ञ द्वारा तुम्हारा मृत्युलोक की योनियो में जन्म होगा, उसी यज्ञ के द्वारा तुम पुनः देवलोक लौट सकोगे…"

…"जीव रूप में यज्ञ का ज्ञान तो नष्ट हो जायेगा, उस ज्ञान को पुनः प्राप्ति कैसे होगी"–ऋषियों ने पूछा।

"……… प्रत्येक चतुर्युगी के प्रत्येक युग में अवतार लीला करूँगा। प्रत्येक युग में मैं वेदव्यास बन वेदों को प्रतिष्ठित करूंगा। हे देवों! आप भयभीत न हों। पृथ्वी पर व्याप्त हो गए पाप को आपलोग स्वयं ओढ़ लें। भटकते मानव समूहों के कल्याण हेतु, उनके पाप को आप सब स्वीकार करें। पाप से स्वयं को अभिशप्त कर, मृत्युलोक में जन्म धारण हेतु गमन करें। ऋषिगण सृष्टियज्ञ का आवाहन करें……" महाविष्णु ने उत्तर दिया।

इस प्रकार "हे कृष्ण द्वैपायन!" भगवान गणपति ने कहा, "देवता ही जीव रूप में नानायोनियों में प्रकट हुए। पृथ्वी पर व्याप्त पाप से उन्होंने स्वयं को अभिशप्त किया और मृत्युलोक में नाना योनियों में विचरते जीवों के उद्धार हेतु जीव बन उत्पन्न हो गए…।

……"जीव ही देव तथा जीव ही दानव ! जीव ही सुर है तथा भटककर यही असुर है। आत्मा ही सृष्टा है जो घट-घट वासी है। जीव जब आत्मा से अद्वैत करे तो देव है और जब भौतिक वासनाओं से अद्वैत करे तो दानव है---।

हे कृष्ण द्वैपायन ! तुम्हीं इस युग के वेद व्यास हो। यज्ञ का आवाहन करो। यज्ञ द्वारा सृष्टा को प्रकट करो। वे तुम्हें सृष्टि रहस्यों का ज्ञान बतावेंगे---।"

वेदव्यास ने भगवान गणपति की स्तुति की तथा आग्रह किया कि हे भगवन् ! आप यज्ञ की ज्वालाओं से मुखरित होती देववाणी को लिपिबद्ध करें क्योंकि योग में स्थापित रहने से मैं लिपिवद्ध न कर सकूँगा।

"तथास्तु !" गणपति मुस्कराये।

घनघोर वन में, हिमालय की सुरम्य गोद में यज्ञशाला का निर्माण हुआ, पीठिकाएँ स्थापित हुई। वेदव्यास यज्ञशाला में योगदान पर विराजमान हुए और गणपति लेखन सामग्री लेकर यथा आसन पर आ विराजे। वेदव्यास समाधिस्थ हो गए। उनके हृदय से तीव्र ज्वाला प्रकट होकर यज्ञ में स्थिर हो गई। यज्ञ प्रकट हो गया। वेदो के प्रकट करनें का संकल्प पूर्ण होने लगा। वेद व्यास धन्य हुए। सबमें पहले स्वयं यज्ञ भगवान यज्ञ में प्रकट हुए। वेदव्यास ने उन्हें प्रणाम किया और प्रार्थना की। यज्ञ भगवान ने उन्हें आशीर्वाद दिया तथा अनुमति दी कि वेदव्यास प्रश्न करें।

उत्पत्ति और प्रलय कैसे होती है ? यज्ञ के द्वारा !
उत्पत्ति और प्रलय किस हेतु होती है ? यज्ञ हेतु !
उत्पत्ति और प्रलय कौन करता है ? यज्ञ ! यज्ञ ही परमेश्वर है।
जीवन का संवार किससे होता है ? यज्ञ से! आत्मा ही यज्ञ है. सो ही परमेश्वर है।
जीव मनुष्य योनि में क्यों आया ? यज्ञ तथा ईश्वरीय लीला के दर्शन हेतु।
मनुष्य द्वारा यज्ञ करने तथा जानने से क्या उपलब्ध होगा ?
यज्ञ ! मनुष्य यज्ञ से अद्वैत कर यज्ञ अर्थात् ईश्वर होगा।
मनुष्य योनि का मात्र लक्ष्य क्या है ? यज्ञ ! यज्ञ से अद्वैत कर स्वयंभू होना।
मनुष्य यज्ञ से अद्वैत कैसे करे ? योग द्वारा।
यज्ञ, योग तथा सृष्टि का रहस्य क्या है ?

तुम्हारे इन प्रश्नों का उत्तर ऋषिगण देंगे। मन्त्रदृष्टा ऋषि; जिन्होंने सृष्टियज्ञ का आवाहन किया था तथा जिनका वह यज्ञ निरन्तर है, वे प्रकट होकर ही यज्ञ के रहस्यों को स्पष्ट करेंगे।

ऐसा कहकर सृष्टा, यज्ञ भगवान, यज्ञ में अर्न्तध्यान हो गए। गणपति और वेदव्यास ने उन्हें प्रणाम किया।

उसके उपरान्त बारी-बारी से यज्ञ की ज्वालाओं में मन्त्रदृष्टा ऋषि प्रकट हुए और उन्होंने सृष्टा द्वारा प्रकट किए गए ज्ञान को वेद के रूप में ज्वालाओं से प्रकट किया।

सबसे पहले मधुछन्दा ऋषि ने यज्ञ, सृष्टि और मोक्ष के रहस्य को स्पष्ट किया। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त की नौ ऋचाओं में उन्होंने स्पष्ट किया कि सृष्टि की उत्पत्ति रूपी यज्ञ में परमेश्वर स्वयं ऋत्विक् अर्थात् यज्ञ का आचार्य बना। परमेश्वर यज्ञ

का आचार्य तो बना ही, स्वयं यज्ञ भी बना। आज भी परमेश्वर स्वयं आत्मा होकर यज्ञ का
आचार्य भी है और यज्ञ भी। वही सम्पूर्ण चराचर में यज्ञ अर्थात् आत्मा होकर प्रतिष्ठित
है। वही घट-घट वासी आत्मा होकर प्रत्येक जीवधारी के शरीर में भोजन को (ब्रह्मा–
विष्णु–महेश, धारक–सृजक–संहारक) यज्ञों के द्वारा रक्त-मांस-हड्डी, सांसों, धड़कनों,
रौशनी, विचार आदि में बदल रहा है। आत्मा ही यज्ञ है। आत्मा ही ब्रह्मा–विष्णु–महेश
रूपी परमेश्वर है। आत्मा ही ऋत्विक् अर्थात् यज्ञ को करने वाला प्रथम आचार्य है।---

-----दूसरे सूक्त में ऋषि ने बताया कि वायु ही सम्पूर्ण यज्ञों में 'अच्छावाक' अर्थात्
उपऋत्विक् अर्थात् उपाचार्य बना। वही आज भी सम्पूर्ण जीवधारियों में प्राणवायु अर्थात्
प्राण होकर प्रतिष्ठित है।---

---तीसरे सूक्त में आदिशक्ति यज्ञ की ज्वाला बनी-----

---इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति यज्ञ के द्वारा हुई तथा आज भी निरन्तर हो रही
है। भस्मी और सड़ी हुई मिट्टी आज भी इसी यज्ञ के द्वारा नाना प्रकार के फलों-फूलों
में लौटती है। वही वनस्पतियां पुनः जीवों के शरीर में यज्ञ होकर रक्त-मांस में बदल उनकी
सन्तानों का रूप धारण करती हैं।

अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥१॥

(अग्निम्) हे अग्नियों के अधिपति! हे प्रलयकर रुद्र। हे पशुपताग्नियों के देवता।
(पुरोहितं) हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों को तत्व रूप प्रकट करने वाले ब्रह्मा! हे ज्ञान रूप पर-
मेश्वर! (ऋत्विजम्) हे सम्पूर्ण चराचर को प्रकट करने वाले! हे सृजन स्वरूप! हे
जीवनदाता विष्णु! (यज्ञस्य देवम्) तुम्हीं तो यज्ञ के देव हो। तुम्हीं तो यज्ञ हो। धारक
रूप ब्रह्मा हो, सृजक रूप विष्णु हो और संहारक रूप महेश हो। तुम्हीं तो ॐ रूप तीन
अक्षर हो।

अ=अस्तित्व, तत्व, ज्ञान, धारक ब्रह्मा! प्रकृति सरस्वती ज्ञान।
उ=उत्पत्ति, सृजन, उत्थान विष्णु! प्रकृति लक्ष्मी उत्थान।
म=मृत्यु, मृत्युञ्जय, महेश! प्रकृति आदिशक्ति संकल्प, ज्वाला।

तुम्हीं आत्मा होकर बने हों यज्ञ! करते धारण, सृजन और संहार! हे घट-घट-
वासी राम और कृष्ण! (ईले) हम स्तुति करते हैं तुम्हारी। स्तुति का अर्थ क्या है?
जानना, पहचानना, धारणकरना, अनुसरण-अनुकरण करना तथा अद्वैत हो जाना। इसको
कहते हैं ईले। (होतारं रत्नधातमम्) तुम्हीं तो निष्काम भाव से सम्पूर्ण चराचर को प्रकट
कर रहे हो। तुम्हीं तो जीवन के बहुमूल्य रत्नमय क्षण निष्काम भाव से प्रदान करते हो?
हर सांस धड़कन, अन्न, फल और फूल तुम्हीं तो यज्ञ के द्वारा न्योछावर कर रहे हो हम
पर! हे महाविष्णु! हे महादेव! हे परब्रह्म! घट-घटवासी आत्मा! हे जीव-जीव के
यज्ञ श्रेष्ठ! हम तुम्हारी स्तुति करें! तुम्हें जानें, पहचानें, तुम्हारी राह का अनुकरण करें
और फिर तुमसे अद्वैत करें। आत्ममय हों! खिलौने से खिलाड़ी बनें! उपासक से उपास्य
हों! आत्मा से योग करें। बुद्धि और आत्मा के द्वैत को योग द्वारा अद्वैत करें। सृष्टा को
जानकर, सृष्टा से अद्वैत करके सृष्टा बनें। भक्त कौन? जो कभी भी आत्मा से विभक्त
न हो सके।-----

सर्व व्यापी श्री राम

श्री स्वामी सनातन श्री

घट-घट वासी भगवान श्री राम चन्द्र जी की तत्वमयी धारावाहिक कथा का आरम्भ कर रहे हैं—सम्पादक

श्री राम कथा से पूर्व

हम संसार (जगत व्यवहार) और परमेश्वर, दो (द्वैत) मानकर चलें अथवा परम सत्ता को घट-घट वासी मानकर ईश्वर और जगत को एक ही मानकर चलें? ईश्वर और जगत दो (द्वैत) है, अथवा ईश्वर और जगत एक (अद्वैत) है? इसी जटिल प्रश्न ने नाना सम्प्रदायों, समाजों और धर्मों को जन्म दिया। इस अनबूझ पहेली ने नाना युगों को तथा मनुष्यता को लड़ाया; नष्ट किया, भ्रमाया और संवारा-सजाया भी। इसी पहेली को लेकर धरा का मानव पिशाच बना और देवता भी। इस पहेली की पृष्ठभूमि से मानव ईश्वर की भांति पूजा भी गया और अनन्त काल तक उसके पुतले भी जलाये गये।

श्रीराम कथा की पृष्ठभूमि में भी कुछ उलझी सी, कुछ सुलझी सी यह पहेली प्रमुख है।

"असुर" (अ+सुर) और "सुर" का टकराव, विरोध, विपरीत मान्यताओं और मानवीय मूल्यों को समय, प्रकृति और न्याय की कसौटियों पर परखती श्रीराम-रावण युद्ध की कथा प्रत्येक युग की सार्थक कहानी है। मनुष्य मात्र के जीवन, उद्देश्यों, उपलब्धियों को स्पष्ट दर्शाने वाला अद्भुत राष्ट्रीय ग्रन्थ है। "श्रीराम चरित मानस।"

एक असुर द्वारा बलपूर्वक अपहरण की हुई अबला को समाज दूषित कह कर ठुकरा दे, अथवा उसे स्वीकार कर सम्मानपूर्वक अधिकार दे, कथा का दूसरा मार्मिक प्रश्न है। हर युग की, प्रत्येक समाज की, मनुष्य मात्र की "अग्निपरीक्षा" है। इस महान ग्रन्थ में।

दशरथ (दश-रथ) जिसने दसों इन्द्रियों को रथ लिया हो, अर्थात् लगाम लगाकर नियन्त्रित कर लिया हो (अर्थात् दसों इन्द्रियों का निग्रह कर; इन्द्रियों को आत्म-यज्ञार्थ प्रयोग करने वाला तथा दशानन (दस इन्द्रियों को दस मुंह बनाकर संसार का भक्षण करने वाला, स्वहित साधन में सचराचर को सताने वाला) कथानक मात्र अतीत का ही नहीं, वरन् प्रत्येक युग का, प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के विभिन्न पहलुओं कों संशय रहित होकर स्पष्ट, सरस, हृदय-ग्राही करने वाला शिक्षाप्रद कथानक है।

शैव सम्प्रदाय के आराध्य इष्ट "श्री भगवान शंकर" कथा सुना रहे हैं, वैष्णव सम्प्रदाय के परम् इष्ट भगवान "श्री रामचन्द्र" की तथा वैष्णव भगवान श्री रामचन्द्र रावण को जीतने के लिए शैव (शंकर) तथा शाक्त सम्प्रदाय की आराध्या नव दुर्गा की श्रद्धा एवं सहयोग का सुखद वरद वातावरण बनाकर साम्प्रदायिक द्वेष, घृणा एवं भेद-भाव को अन्तिम रूप से समाप्त कर, मनुष्यता सद्भाव, प्रेम, समन्वय एवं समादर को प्राण-पल्लवित करने वाले इस महान ग्रन्थ में वर्तमान राष्ट्रीय समस्याओं का भी स्पष्ट समाधान है।

इतिहास के लम्बे अन्तरालों को लांघते हुए ऐतिहासिक घटनाक्रम जब आगे बढ़ते हैं तो उनके ऐतिहासिकता रूपी दही को ऋषि, तपस्वी, सन्तजन विवेक की मथानी से मथने लगते हैं। धीरे-धीरे ऐतिहासिकता की छांछ नीचे गिरने लगती है। और अध्यात्म का मक्खन ऊपर उठने लगता है। युगोपरान्त ये ऐतिहासिक घटनाक्रम विशुद्ध अध्यात्मिक स्वरूप को लेकर प्रकट हो जाते हैं। श्री राम की कथा के साथ कुछ ऐसा ही हुआ है।

श्री राम की कथा का उल्लेख उपमाओं के रूप में वैदिक ऋचाओं में भी आया है। तथा सनातन धर्म के ग्रन्थों में उन्हें महाविष्णु के लीलावतार में ग्रहण किया गया है। त्रेतायुग में भगवान श्री राम का अवतार होता है, तथा द्वापर में महाविष्णु ही जो राम रूप में त्रेता में प्रकट होते है; द्वापर में भगवान श्रीकृष्ण के रूप में लीला अवतार धारण करते हैं।

एक चर्तुयुग ४३,२०,००० वर्ष का होता है जिसके चार भाग होते हैं। यथा:- "सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग"। यदि इस प्रमाण को ही सामने रखें, तो श्री राम की कथा का समय, श्री राम की ऐतिहासिक घटना का समय लाखो वर्ष पूर्व चला जाता है। लगभग नौ से दस लाख वर्ष पूर्व। जिसे पुरातत्व और इतिहास नहीं मानते हैं, उनके विचारों से राम का ऐतिहासिक काल श्री कृष्ण के उपरान्त है।

इतिहासज्ञ और पुरातात्विक विद्वानों का मत लब्ध प्रमाणों से अत्यधिक भ्रमित, घटिया सा जान पड़ता है। लब्ध प्रमाणों से स्पष्ट हैं कि श्री राम का ऐतिहासिक काल श्री कृष्ण के समय से युगों पूर्व रहा है। कृष्ण की कथा में, जहां वेदव्यास स्वयं सुना रहे हैं। भगवान राम का वर्णन सर्वत्र मिलता है परन्तु श्री राम की कथा में भगवान श्री कृष्ण की चर्चा नहीं होती है। इससे स्पष्ट हैं कि श्री राम का इतिहासिक काल श्री कृष्ण से बहुत पूर्व रहा है। दूसरा अकाट्य प्रमाण कथा की व्यापकता से स्पष्ट हो जाता है। श्री राम की कथा श्री श्रष्ण की कथा से कहीं अधिक विश्व व्यापी और चर्चित तथा प्रतिष्ठित सारे विश्व में देखने को मिलती है। इससे स्पष्ट है; कि श्री राम कथा को सारे विश्व में फैलाने के लिए अधिक समय मिला है श्री राम का ऐतिहासिक काल निश्चय ही भगवान श्री कृष्ण से पूर्व है। अति प्राचीन रामकथा के लगभग १५८ महाकाव्य उपलब्ध हैं। उनमें से बहुतों के काफी हिस्से लुप्त हो गये हैं। ग्रन्थों के अतिरिक्त सारे विश्व में हजारों दन्त कथाएं, असंख्यों क्षेपक कथाएं तथा प्राचीन मन्दिर और धार्मिक स्थल सारे विश्व में देखने में आते हैं। इस सभी ग्रन्थों और कथाओं में गाथा लगभग वैसी ही चलती है, थोड़े बहुत अंतर के साथ। यह अंतर भी उन देशों के धार्मिक, सामाजिक तथा अध्यात्मिक मान्यताओं के अनुरूप हुए हैं। उदाहरणार्थः– जिस देश में नारो को सम्पत्ति, उपलब्धि और सम्मान का प्रतीक माना गया है, वहां श्री रामचन्द्र के अनेक विवाह हुए हैं। साथ ही बाल ब्रह्मचारी हनुमान को भी १८ पत्नियाँ दी गयी हैं। राम कथा के खलनायक वश्रवा मुनि के पुत्र लंकेश दशाशन रावण को एक ऐसे आदमखोर की तरह दिखाया गया है जो अपनी ही प्रेयसी (प्रेमिका) का मांस खाता है। इन सब प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि समय के अन्तरालों को लांघते हुए ऐतिहासिक घटनाक्रम अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को खो देते हैं और धीरे-धीरे वे सामाजिक और आध्यात्मिक स्वरूप का निरूपण करने लगते हैं। जिस देश के काल, समाज और उनकी मान्यताओं के समीप से ये कथानक गुजरते हैं, उस देश के विचारकों और मनीषीजन मान्यताओं के अनुरूप जो भी उपलब्धियाँ हैं वह कथा के नायक को समर्पित कर देते हैं और जो बुराइयां हैं वह खलनायक को भेंट कर दी जाती हैं। यूं एक पत्नीव्रती श्री राम तथा बाल ब्रह्मचारी हनुमान भी उन्हीं मान्यताओं के अनुरूप बहु पत्नीव्रती हो जाते हैं। इतिहास की पृष्ठभूमि को सामाजिक और धार्मिक मान्यताएं मिटा देती हैं।

श्री राम कथा इस प्रकार नाना ग्रन्थों में, नाना रूपों में प्रदर्शित की गयी है, परन्तु इस कथा में ऐतिहासिकता को माना तो जा सकता है परन्तु इन कथाओं में ऐतिहासिक

घटनाक्रमों को विशुद्ध रूप से ज्यों का त्यों नहीं रखा जा सकता। इसलिए श्री राम की कथा में भारत की आदि संस्कृति को आधार मानकर तथा आध्यात्मिक मान्यताओं को लेकर, मैं आपके सम्मुख प्रस्तुत हूं। कथा की ऐतिहासिकता को भी इस कथा के क्रम में छूने का ईमानदारी से प्रयास करूँगा। परन्तु मेरी कथा विशुद्ध रूप से बालमीकि, तुलसी कबीर आदि ऋषियों द्वारा सुनाई गयी कथा पर आधारित होगी। उनके नायक राम, घट-घट वासी, अजर-अमर अविनाशी, हमारी देह में वास करने वाले; अर्थात आत्मा होकर व्याप्त होने वाले श्री राम ही हैं।

इसके ऐतिहासिक स्वरूप को भी यथा समय और स्थिति प्रयास करूँगा ये सब होते हुए भी इस कथा का आधार मुनि याज्ञवल्क हैं जिन्होंने ये कथा राजा जनक जी को सुनाई थी। मेरी कथा का विशेष आधार मुनि याज्ञवल्क तथा महर्षि बाल्मीकि ही रहेगें। साथ ही आदि प्राचीन ग्रन्थ तथा दन्त कथाओं को भी स्पष्ट करूँगा। उनका संक्षिप्त स्वरूप, जो कथा की ऐतिहासिकता को भी विपरीत ढंग से प्रदर्शित नहीं करता है, ऐसे क्षेपकों और दन्त कथाओं को भी इसमें लेकर चलेगें।

इसके साथ ही कथा से पूर्व आपको आपके आदि प्राचीन स्वरूप का भी परिचय देना चाहूंगा जिससे श्री राम कथा की पृष्ठभूमि अधिक स्पष्ट हो जाय तया मेरे पावन श्रोतागण कथा के सरस माध्यम को सरलता, सुगमता एवं गर्व सेग्रहण करते हुए परमान्दित हो सकें।

धारावाहिक क्रमशः –

सनातन दर्शन की पृष्ठ भूमि

(धारावाहिक) - स्वामी सनातन श्री

......चिता जल उठी। शरीर भस्मी में बदल गया। भस्मी ने पानी का संग किया। नालियों का सड़ता पानी बन, डोलता फिरा, मानव शरीर !

जड़ों ने खींचा इस जल को। अन्तराल में वृक्ष, पौधों के; यज्ञ किये ॐ रूपी आत्माओं ने ! भस्मी बदल चली नाना-नाना पुष्पों, फलों–वनस्पतियों में !

भोजन स्वरूप ग्रहण किया दम्पत्ति ने वनस्पति को ! शरीर में यज्ञ किये आत्माओं ने। वनस्पति रक्त मांस के कणों में बदल चली। जुड़े जब बिन्दु गर्भ के क्षीरसागर में— भस्मी पुनः सुन्दर बालक बन बैठी !

शरीर—चिता—भस्मी—खाद—वनस्पति—पुनः बालक ! यही है कहानी आपकी! सुना रहा हूँ आपको ! आइये चलें ! 'सनातन दर्शन की पृष्ठभूमि' में—

पहचाने स्वयं को !......

स्वामी सनातन श्री

प्रथम अध्याय

यज्ञोपवीत

भक्तगण !

यज्ञोपवीत सनातन दर्शन का विशिष्ट अंग है। सनातन दर्शन जो विश्व के सम्पूर्ण दर्शन एवं नाना वेदों–ज्ञान, विज्ञान आदि का सृष्टा है पूर्ण रूप से समाया हुआ है; इन यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों में। यज्ञोपवीत धारण कराने की परम्परा उतनी ही पुरानी है जितना कि सनातन दर्शन का भूतल पर देवलोक से पदार्पण। यज्ञोपवीत के बिना आप वेद के अधिकारी नहीं हो सकते हैं। यह क्यों है इतना महान? क्यों इसको तीन यज्ञों का प्रतीक मानता हूं, और कौन हैं वे यज्ञ? आज मैं इस प्राचीनतम रहस्य का अनावरण करूँगा जिससे आप इसके महत्व को जान सकें और इस पर गर्व कर सकें।

चलें युगों पूर्व अतीत के अन्तरालों को लाँघते हुए। गुरुकुल में आया है एक नन्हा सा बालक ज्ञान प्राप्ति हेतु। यहीं रहेगा और गुरुकुल में वेदों का ज्ञान अर्जन करते हुए गुरु की सेवा करेगा। अब शीघ्र लौटकर घर नहीं जावेगा। गुरू के मन में अन्तर्द्वन्द है। गुरू के मस्तिष्क में दो विपरीत भाव हैं। प्रथम तो यह कि यह बालक, जो ज्ञान लेने आया है, निश्चय ही उसे ज्ञान मिलना चाहिए, क्योंकि ज्ञान तो गंगा है। जिस प्रकार गंगा का जल न मिलने से मनुष्य तड़प-तड़प कर प्राण दे देता है, प्यासा मर जाता है, वही गति अज्ञानी की है। अरे! अज्ञानी के जीवन और मृत्यु में अन्तर कहाँ है। वह तो जीवित भी मृतक तुल्य है। इसलिए इस अबोध बालक को निश्चय ही ज्ञान बोध हो, यह विद्वान बने!

पुनः विपरीत भाव प्रकट होता है गुरू के मस्तिष्क में। सोचते हैं अरे! ज्ञान तो गंगा रूपी महानदी है जिस प्रकार गंगा लहरों से अठखेलियाँ करने वाला तैराक बीच धारा में डूब मरता है, उसी प्रकार ज्ञान रूपी गंगा की लहरों से खिलवाड़ करने वाला विद्वान बीच धारा

में भटक कर डूब मरता है और नाना पाप योनियों को प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, वह ज्ञानी होने के कारण समाज के एक विशाल अंग को भी प्रभावित कर भटका देता है। इस प्रकार समाज का एक विशाल जन-समूह, ज्ञान रूपी नदी में डूबकर नाना पाप योनियों में भटकने लगता लगता है। अहो! इस सम्पूर्ण पाप का अधिकारी भी तो गुरू को बनना पड़ता है क्योंकि इस ज्ञान मार्ग को दर्शन तो उसी ने ही कराया। तो एक ओर ज्ञान हीन होना भी पाप हो सकता है, और दूसरी ओर ज्ञान देना भी पाप हो सकता है।

तब कैसे इस बालक को ज्ञान दूं कि जितना भी उसे ज्ञान हो उतना ही उस मार्ग पर चलता रहे, उतना ही नम्र एवं अर्न्तमुखी हो, तपस्वी हो, और मोक्ष-मार्गी होकर लक्ष्य को प्राप्त हो? किस प्रकार उसे बचाया जावे कि ज्ञान का विस्तार उसे कुतर्की, दम्भी और मार्ग-हीन न बना सके और बीच ज्ञान-गंगा में भटक कर वह पाप योनियों में भटकता न फिरे।

इन्हीं विचारों से प्रेरित उस बालक को लेकर चिता के समीप गुरू जाते हैं, जिससे गुरू उस बालक को ज्ञान दें, सर्व प्रथम उस बालक का ही; अर्थात् वह बालब सर्वप्रथम ज्ञान के रूप में जाने कि वह स्वयं क्या था, क्या है, अब क्या बनना है उसको, तथा क्या-क्या बन सकता है वह।

गुरू उस चिता पर लेटे मृत शरीर को दिखाकर बालक को उपदेश करते हैं, "अरे बालक! देखो यह मृत शरीर जो चिता पर शान्त लेटा है, यह कभी नवयुवक था, उससे पूर्व तुम्हारी ही भाँति एक नन्हा बालक था, इसी प्रकार आया था गुरुकुल में ज्ञान लेने। अरे देखो! अपने ज्ञान का दर्प और भटकाव बना कर यह डूब गया है, और अब आतुर है नाना पाप योनियों में भटकने को। आज इसकी रावण गति है। आतमा रूपी प्रभु राम आज नहीं हैं, हर लिया है इस अर्थी रूपी सीता को, दशानन रूपी दस इन्द्रियों के भटकाव ने। अग्नि प्रकट होगी और राख में परिवर्तित हो जावेगा यह शरीर। डोलती और भटकती फिरेगी भस्मी, गली-गली, जंगल-जंगल, और सड़ता हुआ बदबूदार पानी बन जावेगी। तब एक-एक पेड़ में, पौधे में, वृक्ष में, प्रकट होगा आतमा रूपी हवन-कुण्ड राम! जड़ें खींच लेंगी उस सड़ते पानी को और वही पानी उस आत्मारूपी कुण्ड में यज्ञ होकर पुनः सुन्दर वनस्पति में प्रकट होगा। इस प्रकार रावण गति से उद्धार होकर यह डोलती भस्मी पुनः राम की कृपा को प्राप्त होगी। वही वनस्पति ग्रहण करेंगे जब दम्पति तो गोभी, बैगन, आलू पुनः रक्त, मांस में बदल कर नन्हें बालक का स्वरूप धारण करेंगें, उस स्त्री के गर्भ रूपी क्षीरसागर में। राम कृपा से पुनः मनुष्य रूप धारण कर सकेगा यह, जो भटक कर राख में बदल जावेगा अब शीघ्र ही।

दो मार्ग दिखाए हैं रामायण में। एक मार्ग है दशरथ और दूसरा मार्ग है दशानन। 'रथ' ली हैं दसों इन्द्रियाँ जिसने, वह तो कहाया 'दश/रथ' = दशरथ, और आत्मा राम को प्राप्त होकर मोक्ष का अधिकारी बना। यही मार्ग है तेरा। दूसरा मार्ग है दशानन। दस मुख बन बैठी हैं दसों इन्द्रियाँ जिसकी, उसे दशानन कहा है। दसों इन्द्रियों को दस मुख बनाने से वह व्यक्ति ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञानी भी महान है परन्तु वहिर्मुखी होने के कारण स्वयं से अनभिज्ञ होता हुआ चिता को प्राप्त होता है। इस प्रकार दो मार्ग हैं—प्रथम दशरथ से राम और मोक्ष; दूसरा दशासन से रावण और चिता, तदन्तर भस्मी, उपरान्त वनस्पति, पुनः पुनः जन्म एवं भटकाव नाना योनियों का।

जब यह बुद्धि अपनी लक्ष्मण रेखाओं (राम की मर्यादा का नाम ही लक्ष्मण रेखा है) को पार कर गई, दशरथ (दश इन्द्रियों को रथकर अन्तर्मुखी होकर आत्मा से बुद्धि का योग करना) मार्ग से हटकर दशानन (दस इन्द्रियों को दस मुख बना कर वहिर्मुखी होना) मार्ग पर चलने लगी, तो दशानन हरण कर ले गया इसे अर्थी बनाकर चिता पर और भस्मी बनाकर बहा दिया इसे बन-बन भटकने को। तब प्रत्येक वनस्पति में प्रकट हुआ आत्मा राम और डोलता फिरा बन-बन अपनी सीता को खोज-खोज कर पुनः लौटाने को; और परिवर्तित करने लगा उस आत्मा रूपी हवनकुण्ड की अग्नि द्वारा वनस्पति के नाना रूपों में। यूँ अग्नि-परिक्षा द्वारा ही तो लौटी सीता।

प्रकृति और आत्मा के संघर्ष का नाम ही राम-रावण युद्ध है। क्योंकि सनातन का अर्थ है नित्य। नित्य तो आत्मा ही है, इसलिए आत्मा मात्र का धर्म ही सनातन धर्म है। सनातन की प्रत्येक पुस्तक आत्मा और प्रकृति के संघर्ष को ही नाना उपमाओं एवं माध्यमों के द्वारा प्रकट करती है। आत्मा (सनातन) प्राप्ति ही लक्ष्य है। जो पेड़ों में, नाना जीव धारियों में आत्मा रूपी हवनकुण्ड हैं, जो भस्मी को यज्ञ के द्वारा वनस्पति में तथा वनस्पति को रक्त, मांस और हड्डी में परिवर्तित कर रहे हैं उनके दर्शन का नाम ही सनातन दर्शन है। उनका धर्म ही सनातन धर्म है। चूंकि गोभी, बैंगन, आलू, चूहा, कबूतर, शेर आदि किसी सम्प्रदाय विशेष (हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख ईसाई आदि) से प्रेम अथवा लगाव नहीं रखते इसलिए सनातन को सम्प्रदाय कहना मूर्खता होगी।

जी हाँ! तो गुरू उसे समझाते हैं कि अरे बालक! इसे मैं तुझे भली प्रकार समझाना चाहूँगा जिससे तू इस व्यक्ति की भाँति भटके नहीं, वरन् आत्मा रूपी हवनकुण्ड में शरीर

रूपी हवन-सामग्री को सम्पूर्ण यज्ञ करके तेज में परिवर्तित कर मोक्ष का अधिकारी बन सके। जब सम्पूर्ण शरीर तेज में योग एवं तप के द्वारा परिवर्तित हो जावेगा, तो बुद्धि और आत्मा का द्वैत सदा के लिए अद्वैत में परिवर्तित हो जायेगा। भस्मी शरीर बनेगा नहीं, तो पुनर्जन्म होगा किसका? यही है मोक्ष। अन्यथा रावण की गति है।

यह तीन सूत्रों का यज्ञोपवीत तीन यज्ञों का प्रतीक है कि, प्रथम तू किस प्रकार यज्ञ के द्वारा भस्मी से वनस्पति में आया; दूसरा, किस प्रकार तू वनस्पति से मनुष्य स्वरूप में यज्ञ के द्वारा लाया गया, और तीसरा सूत्र उस यज्ञ का प्रतीक है जिसके द्वारा तू बुद्धि पुजारी आत्मारूपी हवनकुण्ड में शरीर रूपी हवन-सामग्री को यज्ञ करके सम्पूर्ण को तेज में परिवर्तित करके मोक्ष का अधिकारी हो सके। तीसरा यज्ञ मात्र ही करना है तुझे। प्रथम दो यज्ञ तो स्वयं भगवान् यज्ञेश्वर, आत्मा, राम, ॐ कृष्ण, कहा जिसको, तेरे लिए करते हैं। वही तुझ भटके हुए और सड़ते हुए रावण गति प्राप्त स्वरूप को पुनः वनस्पति में और वनस्पति को रक्त-मांस-हड्डी और बालक रूप में लाते हैं।

श्री मद्भगवत् गीता अन्तर्द्वन्द की पुस्तक है। गीता में आत्मा ही कृष्ण है, इस शरीर रूपी रथ का सारथी है। बुद्धि, जो दसों इन्द्रियों के अर्जन से अर्जित है, अर्जुन कहा है उसको। इन्द्रियों ने ही मिलकर स्वरूप दिया है, इसलिए इन्द्र का बेटा कहलाया। अर्थात् इस बुद्धि के पास जो भी ज्ञान है वह सम्पूर्ण इसी जन्म का, जो कुछ देखा, सुना, अनुभव किया आदि ही तो है। पिछले जन्म जन्मान्तरों का ज्ञान तो सारथी, कृष्ण; आत्मा के पास ही है। इस प्रकार एक युद्ध की सत्य घटना को पृष्ठभूमि में रखकर समझाया है एक अन्तर्द्वन्द, बुद्धि का आत्मा से, कृष्ण-अर्जुन-संवाद, मैं का मैं से, मैं के लिए, मैं तक।

मायाओं का महासमर ही महाभारत है। माया ही जीव की मृत्यु का कारण है। बुद्धि अर्जुन महारथी है। यज्ञोपवीत ही धनुष है उसका इसीलिए यह सदा धनुषाकार पहनाता हूँ। शरीर रथ है, आत्मा सारथी है। बुद्धि अर्जुन को यज्ञोपवीत रूपी गाण्डीव पर त्याग के पैनेबाणों द्वारा सम्पूर्ण मायाओं को काटते हुए अन्तर्मुखी होकर सम्पूर्ण को तेज में परिवर्तित करना है। उसको अन्तर्मुखी होने में, तीसरा यज्ञ करने में, बाधक हैं सम्पूर्ण मायाएँ नाना ग्रहों (प्लेनेट्स) की माया (ग्रेविटी), माता-पिता के स्नेह, मोह, ममता आदि मायाएँ, पत्नी की, सन्तान की नाना मायाएँ, मकान, दुकान आदि की मायाएँ। इस प्रकार की नाना मायाओं के भ्रम में फँस कर यह बुद्धि अर्जुन भटक जाता है और मायाओं के माया युद्ध से मोहित होकर युद्ध

की सुधि ही नहीं रहती इसको।

माया कहा उसको, जो दो अस्तित्वों के मध्य गुरुत्वाकर्षक आकर्षण उत्पन्न हो जाने से बुद्धि को बहिर्मुखी करके, आत्म मार्ग के विपरीत करके, भटका दें और बीच मायाओं के महासमर में खड़ा सेनानी युद्ध को भूल कर गाण्डीव से अनभिज्ञ होकर नाना लिप्साओं में फँसा सुन्दरियों, अट्टालिकाओं के स्वप्न देखने लगे। दशरथ बने नहीं, और बन बैठे दशानन रावण; स्वयं अपनी ही आत्मा, राम का द्रोही, मायाओं से मोहित और मायाओं के कारण नष्ट होने वाला, एक ऐसा योद्धा जो अपने ही सारथी, आत्मा, कृष्ण का द्रोही बन बैठा है। मायाओं का भार घटा कर क्षीरसागर (space) की सृष्टि करके यज्ञकर्ता बनने के विपरीत मायाओं से लिप्त हो रहा है, उसका प्रभाव बढ़ा रहा है जिससे इस शरीर रूपी रथ का विघटन अधिक तीव्र होता जा रहा है। राम-रावण युद्ध अब शरीर के भीतर ही होने लगा है। बुद्धि दशानन बन बैठा है, आत्मा, राम, से ही युद्ध करने लगा है, शत्रु मायाओं का मित्र बन कर। कहा :–

Where is gravity, there is decay. Where there is decay, there is death. No gravity, no decay; no decay, no death, State--immortal.

अरे बालक, इस माया रहस्य को जान! प्रत्येक लिप्सा, जो मुझे आत्मा, सारथी, के विपरीत ले जाती है, दशरथ से दशानन बना देती है, अन्तर्मुखी मार्ग से विपरीत बहिर्मुखी बना देती है, मेरी शत्रु है, योग और तप की बाधा है मोक्ष मार्ग का अवरोध है, और बीच ज्ञान गंगा में भटका कर चिता पर चन्द मुट्ठी राख में परिवर्तित करके नाना पाप योनियों में भटका देती है। हा! ज्ञान लुट जाता है, सम्पूर्ण भौतिक उपलब्धियाँ छिन जाती हैं, और भटकता फिरता हूँ मैं। पुनः राम कृपा से, सारथी कृष्ण के दयार्द्र होने से, मुझे बालक स्वरूप प्राप्त होता है और पुनः सब कुछ खोकर नए सिरे से ज्ञान प्राप्त करने मुझे गुरुकुल आना पड़ता है। इस आत्म-द्रोही, मोक्ष-द्रोही मायाओं को पहचान और यज्ञोप-वीत रूपी गाण्डीव पर त्याग के पैने वाणों द्वारा नष्ट कर दे इनके सम्पूर्ण प्रभाव को तब मिलन हो तेरा उस आत्मा रूपी "कृष्णाः", (हवनकुण्ड) से और यज्ञ के रहस्य को, स्वयं के करोड़ों जन्मों के ज्ञान को, जानकर तथा 'परब्रह्म' के ज्ञान को जानकर ब्रह्म का ज्ञाता होकर, द्वैत को सदा के लिए अद्वैत में परिवर्तित करके तू स्वयं सृष्टा बने। परम + आत्मा = परमात्मा, परम् + ईश्वर = परमेश्वर, बने मुक्त हो जाये सदा- सदा के लिए इस जन्म-मृत्यु के चक्कर से। लुट न सके जब ज्ञान तेरा, भटक न सके तू जब, मायाओं द्वारा छला न जा

सके अरे ! तभी तो तू ज्ञानी है। स्थूल इन्द्रियों से अर्जित ज्ञान को ज्ञान कहा किसने ? जो संदेह से परे है, ऐसा ज्ञान तो मात्र आत्म-मार्ग से ही ग्रहण होता है। । स्थूल इन्द्रियों से अर्जित ज्ञान तो तुझे किसी भी क्षण दशानन बना सकता है, नाना भ्रान्तियों और लिप्साओं में बहका कर चिता पर सब कुछ छीन कर तुझे पापमार्ग पर नर्क भोगने भेज सकता है, सो सावधान ! मोह, ममता, स्नेह, भी माया का स्वरूप ही है। इसे आगे चल-कर बताऊँगा तुझे ! पहले तू यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों के रहस्य को जान !

प्रथम सूत्र है प्रथम यज्ञ सनातन का। जैसा कि गीता में कहा कि मैं ही यज्ञ के द्वारा संपूर्ण वनस्पति की सृष्टि करता हूँ। किस प्रकार यह शरीर पुनः वनस्पति बनता है, उसका ज्ञान तुझे प्रथम सूत्र से देता हूँ।

देखो बालक ! चिता जल रही है। शरीर यज्ञ होने लगा है कपाल क्रिया द्वारा महारथी भी स्वतंत्र कर दिया गया है। अब इस रथ पर न तो सारथी कृष्ण है, और न महारथी अर्जुन ही। आत्माकुण्ड में यज्ञ न कर सका बुद्धि पुजारी इस शरीर रूपी सामग्री को, तो फल मिले कहाँ से ? जो एक यज्ञ तो कर न सका, यज्ञ के रहस्य जान न सका, उसे मोक्ष (सृष्टापद) का अधिकारी कहा किसने ?

जल रही है चिता धू-धू कर, शरीर बदल रहा है भस्मी में, धुएँ में । धुएँ को पी जावेगी वनस्पति और इस प्रकार वह पुनर्जन्म को प्राप्त होगा। भस्मी जो शरीर था उसका, डोलता फिरेगा, भटकता फिरेगा, पानी का संग करके खाद बनेगा—देखो ऐसे ही पानी इन दस पौधों के पास से गुजर रहा है। आम की जड़ों ने खींचा, आत्माओं ने यज्ञ किया, नालियों का सड़ता पानी मीठे आम में बदलने लगा, बगल में नींबू के पौधे ने उसी पानी को पीकर खट्टा नीबू बना दिया, कड़वी मिर्च, काला बैंगन, सफेद गोभी, सुन्दर गुलाब का फूल, नाना स्वरूपों में परिवर्तित होने लगा है जो कभी शरीर था किसी का। तब वह आत्मारूपी हवनकुण्ड क्या है ? कैसा स्वरूप है उसका ? सो जानो ! उस आत्मा रूपी हवनकुण्ड, सारथी कृष्ण, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, ॐ का स्वरूप दिखाता हूँ तुझे !

——:०:——
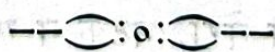
ॐ

↓

अ	+	उ	+	म
अस्तित्व	+	उत्पत्ति	+	मृत्यु, मृत्युंजय
तत्व	+	सृजन	+	विसर्जन
धारक	+	सृजक	+	संहारक
ब्रह्मा	+	विष्णु	+	महेश
जी [G]	+	ओ [O]	+	डी [D]
जनरेटर	+	आपरेटर	+	डिस्ट्रायर
Generator	+	Operator	+	Destroyer

गाड

↓

अल्लाह

↓

अलिफ	+	लाम	+	हे
धारक	+	सृजक	+	संहारक

↓

अल्लाह

इस प्रकार सृष्टि के आदि काल में तीन महादेव कहाए, महाविष्णु, महाब्रह्मा और महाशिव। ब्रह्मा ने उन विन्दुओं की सृष्टि की जिनसे निर्मित सम्पूर्ण चराचर है। परन्तु ब्रह्मा ने तो ब्रह्म विन्दु ही बनाए। आश्चर्य तो उन महाविष्णु, सृजक, का है जो एक ही प्रकार के विन्दुओं को सृजन के द्वारा नाना-नाना रूप दे देते हैं। वही भस्मी चिता की, वही नाना वनस्पति एवं वही नाना जीवधारियों के नाना अंगों का स्वरूप धारण कर लेती है जब क्षीरसागर ((Space) मायामुक्त क्षेत्र) में पेड़ के, भस्मी यज्ञ के द्वारा वनस्पति में ; एवं क्षीर सागर में शरीर के पुनर्यज्ञ के द्वारा वही वनस्पति रक्त, मांस एवं हड्डी में, परिवर्तित होकर बालक का रूप बन जाती है, नाना अंगों की सृष्टि करने लगती है। महाशिव उन खिलौनों का संहार कर उन्हें पुनः सूक्ष्म ब्रह्म विन्दुओं में बदलने लगे जिससे

विष्णु शक्ति उनका पुनः सृजन कर सके। इस प्रकार धारक, सृजक, संहारक क्रियाओं के द्वारा निरंतर उत्पति, विसर्जन के खेल आरम्भ हुए। जुड़े जब विन्दु क्षीरसागर (Space) में, तो नन्हीं गोलियों में बदलने लगे, उस क्षीरसागर में, माया मुक्त क्षेत्र में। यही गोलियाँ जुड़-जुड़ कर उल्काओं का स्वरूप धारण करने लगीं, इसी प्रक्रिया से ग्रहों, नक्षत्रों, सितारों में बदलने लगीं। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार विन्दु (Atom) से वृक्ष एवं विन्दु से बालक की सृष्टि क्षीरसागर में सृजन यज्ञ के द्वारा होती है। उसी प्रकार से क्षीरसागर में विन्दु (atom) से ग्रह (planet) की सृष्टि भी यज्ञ के द्वारा सृजन से होती है। जिस प्रकार मायाओं का प्रभाव बढ़ने से जीवधारी मृत्यु को प्राप्त होकर विसर्जित होते हैं उसी प्रकार ग्रह भी माया का सम्पूर्ण प्रभाव होने से महा प्रलय (total decay due to total gravity) को प्राप्त होकर पुनः विन्दु-विन्दु (atoms) में परिवर्तित हो जाते हैं, जिसे मैं बाद में तुझे सविस्तार बताउगा।

इस प्रकार महाविष्णु क्षीरसागर (space) के अधिपति कहाये क्योंकि सृजन क्रिया (integration of atoms) माया (gravity) में संभव नहीं है। यदि ऐसा होता तो आधुनिक वैज्ञानिक भस्मी से मनुष्य और मिट्टी से सोना, हीरा बना लेता, परन्तु माया में विसर्जन (decay) ही हो सकता है इस लिए प्रययंकर (cosmic lord) महाशिव माया क्षेत्र के देवता कहाये, पृथ्वी का अधिपत्य उन्हें प्राप्त हुआ। हिमालय उनका सिंहासन बना। सृजन और संहार तो उन्हीं बिन्दुओं (atoms) का ही करना है। इससे महाब्रह्मा सर्वत्र अधिकारी होने से प्रजापति कहाये और सर्वत्र उन्हें स्थान मिला। इन तीनों महादेवों की शक्तियां भी नाम-गुण के अनुरूप कहाईं। महाब्रह्मा से ब्रह्म, महाविष्णु से विष्णु शक्ति, और महाशिव से शिव शक्तियां प्रकट हुई और अ, उ म् जुड़ने लगे और ॐ रूपी आत्माओं को सृजक, संहारक, धारक, क्रियाएँ नाना सृष्टियों को स्वरूप देने लगीं। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रहों,, वनस्पतियों आदि का सृष्टि चक्र आरम्भ हो गया। यही आत्मा ही जब परमपद को प्राप्त होगी तो परम+आत्मा = परमात्मा हो जावेगा तू ! यही है लक्ष्य तीसरे यज्ञ का। यही दर्शन ईस्वी पूर्व पाश्चात्य विद्वानों का भी था। "god" ही "god." में परिवर्तित होता है। अर्थात् जब गॉड का जी (g) छोटा था तो गॉड देवी देवता अर्थात् आत्माओं का प्रतीक माना गया परन्तु गॉड की 'जी' जब बड़ी (capital) 'G, में बदली तो गॉड, परमात्मा बन गया। अक्षर वही है, ढंग लिखने का वही है पर अन्तर विन्दु और सम्पूर्ण ब्रह्मांड का है केवल छोटी और बड़ी 'जी' से। यही दर्शन

मुहम्मद पूर्व अल्लाह(अलिफ+लाम+हे) का भी था।

सबने परमेश्वर को तीन अक्षर ही क्यों दिये ? इसका रहस्य क्या है ?

——क्रमशः अगले अंक में।

सर्वहित ही स्वहित है। प्राणीमात्र की निष्काम सेवा करें।

मुहम्मद पूर्व अल्लाह (अलिफ + लाम + हे) का भी था ।

सबने परमेश्वर को तीन अक्षर ही क्यों दिये ? इसका रहस्य क्या है ?

——क्रमशः अगले अंक में ।

सर्वहित ही स्वहित है । प्राणीमात्र की निष्काम सेवा करें ।

हे अर्जुन ! ब्रह्मों में परब्रह्म ; रुद्रो में शंकर ; वैष्णवों में महाविष्णु, धनुर्धारियों में राम ; प्रणवों में ॐ ; छन्दों में गायत्री ; एवं सम्पूर्ण भूत प्राणियों में आत्मा होकर मैं ही स्थित हूँ ।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गों देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

ॐ

अ	उ	म्
अस्तित्व, तत्व, धारक	उत्पत्ति, सृजन, सृजक	मृत्यु, मृत्युञ्जय
ब्रह्मा	विष्णु	महेश

गुरु मन्त्र

वन्दे कृष्णं जगत गुरुम

भूः – उत्पत्ति को करने वाला ।
भुवः– उत्पन्न किये हुए को धारण करने वाला ।
स्वः – आत्मा होकर जीव मात्र में स्थित होने वाला ।
तत्सवितुः–ऐसे सविता स्वरूप, ज्योतिर्मय आत्मा रूपी वासुदेव का
वरेण्यम्– वरण करता हूं ।
भर्गो – ज्योति के भरतार ।
देवस्य – अमरत्व के लिये ।
धीमहि – बुद्धियों को
धियो यो नः–हमको जो धारण कराने वाले ।
प्रचोदयात् –प्रकाशित करने वाले हैं ।

–परमयोगी स्वामी सनातन श्री

ॐ अर्थात् घट-घट वासी ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूपी आत्मा जो हमको उत्पन्न करने वाला है । हमको प्रतिक्षण धारण करने वाला है । जड़त्व को ज्योतिर्मय अमर रश्मियों से युक्त कर अमरत्व प्रदान करने वाला है तथा जो बुद्धियों को प्रकाशित करने वाला है । ऐसे सूर्य के समान तेजस्वी आत्मा का हम वरण करते हैं । आत्म यज्ञार्थ ; आत्म सेवार्थ; आत्मवत् जीने का संकल्प करते हैं ।

आत्मा की भांति ही प्राणी मात्र की निष्काम सेवा ; जीवन के क्षणों एवं शरीर इन्द्रियों का आत्म यज्ञार्थ प्रयोग तथा आत्मा वासुदेव की प्राप्ति (आत्माद्वैत) हेतु जीवन का मात्र लक्ष्य धारण करते हैं ।

श्री हरि हमारे संकल्प को पूर्णता प्रदान करें ।

तन एक मन्दिर

वीळु चिदारूजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वाह्निभिः । अविन्द उस्त्रिया अनु ।। (ऋग्वेद १।६।५)
देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम ।। (ऋग्वेद १।६।६)

शरीर मन्दिर में आत्मा होकर स्वयं ईश्वर ही तो प्रतिष्ठित है, जहाँ जीव होकर तुम पुजारी हो। मन्दिर, मूरत और पुजारी की आदि कल्पना का उद्देश्य यही तो था।

पत्थरों के बने मन्दिर में पवित्रता एवं शुद्धता का पूरा ध्यान रखा—परन्तु देह मन्दिर में, आत्मा साक्षात् ईश्वर के प्रति क्या ऐसा ही पवित्र भाव और आचरण किया ?

मन्दिर की भाँति ही निज देह देवालय को नित्य प्रणाम करता हुआ, निमित्त पुजारी भाव से आत्मवत् आचरण एवं जगती को धारण कर। यही विदेह का ब्रह्म ज्ञान है।

आत्मवत् हो गया जो, मति निर्मूल हो गई जिसकी विद्वता, वाणी तथा इन्द्रियों की चेष्टायें आत्मवत् हो गई। श्रुतियाँ कहती हैं—वही महामनु अर्थात् स्वयं ईश्वर हो गया। जीवन यज्ञ करो।

—श्री स्वामी सनातन श्री

श्रीमद्‌भगवद् गीता महाभाष्य

(धारावाहिक) --स्वामी सनातन श्री

······नेपोलियन, हिटलर और मुसोलिनी जिस युद्ध की कल्पना से काँप उठते हैं, वह युद्ध भयंकर----लड़ता है अर्जुन !

वे युद्ध में केवल शत्रुओं को मारते हैं परन्तु उस अर्जुन रूपी वानप्रस्थी को, कुरुक्षेत्र रूपी यज्ञभूमि में, यज्ञोपवीत रूपी गाण्डीव पर, त्याग के धारदार अस्त्रों द्वारा, सम्पूर्ण शत्रु, मित्र, स्वजन नष्ट करने----त्यागने पड़ते हैं--तभी वह शिखा-सूत्र (यज्ञोपवीत) त्यागकर, दण्ड-कमण्डल धारण कर, वानप्रस्थी हो--योग मार्ग से स्वर्गारोहण कर सकता है।

······और हो सकेगा स्वर्गारोहण किसका ?

जिसकी भक्ति रूपी बुद्धि सहदेव जागृत हो, मणिपुष्पक शंख को फूंक चुकी हो और जो भक्ति मार्ग से नकुल रूपी ज्ञानबुद्धि को प्रकट कर चुका हो तथा नकुल सा ज्ञानी हो, न कुल देखने वाले ज्ञान को धारण कर लक्ष्य बुद्धि अर्जुन को जागृत कर, देवत्य को प्राप्त होने के लिये देवदत्त शंख फूंक चुका है और जिसके शंख की आवाज पर संकल्पबुद्धि भीम उछल कर युद्ध भूमि में पौन्ड्र शंख फूंक रहा है। अरे ! उस धर्मबुद्धि युधिष्ठिर की अनन्तविजय हुंकार को कौन रोक सका है ?

तभी तो पाँच तत्वों के जनक आत्मारूपी भगवान श्रीकृष्ण ने आज पाञ्चजन्य शंख फूंक दिया है······

दिव्य दर्शन

श्री मद्भगवद्गीता

महाभारत ऐतिहासिकता की पृष्ठभूमि से उभरता एक विशुद्ध आध्यात्मिक ग्रन्थ है। इस महाकाव्य की एक विशेषता और भी है कि ये ज्ञान, विज्ञान, शिल्प, ज्योतिष विद्या, वाणिज्य आदि सभी स्तरों पर हर प्रकार के ज्ञान को देने वाला एक अद्भुद् ग्रन्थ है।

कहते हैं कि जो इस ग्रन्थ में नहीं है वह फिर कहीं नहीं है। इस ग्रन्थ की इन विशेषताओं के साथ एक विशेषता यह भी जुड़ी है कि ये एक ओर तो ऐतिहासिक घटनाक्रम को हम तक पहुंचाता है। उस इतिहास को जो कि आज से लगभग छः हजार वर्ष पूर्व का घटनाक्रम है। उसको स्पष्ट करता है। दूसरी ओर ये ग्रन्थ हमारे जीवन को सर्वांग सजाता सवांरता हुआ आगे बढ़ता है और तीसरे स्तर पर ये महाकाव्य विशुद्ध आध्यात्मिक होकर हर व्यक्ति के जीवन की कहानी बन जाता है। इतिहास के लम्बे अन्तरालों को पार करते हुए जब ऐतिहासिक घटनाक्रम आगे बढ़ते हैं तो उन्हीं कथाओं को पृष्ठभूमि में रखकर सन्त, ऋषि, मनीषीजन और कवि आदि उनको सवाँरने लगते हैं। उनके द्वारा समाज को सुसंस्कृत करने; हर व्यक्ति के जीवन को पवित्र करने के उद्देश्यों को लेकर उन्हीं घटनाक्रमों को महाकाव्य में रचने लगते हैं। धीरे-धीरे ये ग्रन्थ ऐतिहासिकता की पृष्ठभूमि को छोड़ते हुए सामाजिक और आध्यात्मिक हो जाते हैं।

महाभारत काव्य में; भगवान वेदव्यास ने जो इसके रचयिता हैं, कथा के आरम्भ में ही अपने इन उद्देश्यों, मन्तव्यों, को स्पष्ट किया है। वे अपनी कुटिया में विचार मग्न बैठे हैं। उनके मन में एक चिन्ता है। वे सोचते हैं कि उन्होंने भगवान गणपती की कृपा से जो वेद रूपी ज्ञान के महान विशाल उन्नत पर्वतों का संकलन किया है, वे भी कलियुग के लोगों के लिए ग्राह्य नहीं रहेंगे। क्योंकि वे इतने ऊंचे ज्ञान के शिखर हो जाएंगे जहां तक साधारण सहज मनुष्य का पहुँच पाना सम्भव नहीं होगा। वेदव्यास इसी विचार में खोये हैं कि

इतने उन्नत पर्वतों पर पहुंचने के लिए एक सीढ़ी भी देनी चाहिए। जिस सीढ़ी से होकर भूतल के मनुष्य उस तक पहुँच सके।

कथा आती है कि भगवान ब्रह्मा जी ऐसे समय में कुटिया में पधारते हैं। उनको देखकर वेदव्यास उठते हैं उनका उचित आदर करते हैं पाद्य, अर्घ, पूजा आदि करके वेदव्यास उन्हें प्रणाम करते, नत मस्तक होकर बैठ जाते हैं। ब्रह्मा जी वेदव्यास से पूछते हैं :–"वेदव्यास! आप किस चिन्ता में खोये हुए हैं ?"

वेदव्यास उत्तर देते हैं "भगवन् वेद रूपी उन्नत शिखर तक पहुँचने के लिए मैंने महाभारत रूपी एक महाकाव्य की कल्पना की है। मेरा यह काव्य सोलह लाख श्लोकों का होगा। जिसके बारह लाख श्लोक देवलोक के लिए होंगे, जिन्हें देव ऋषि नारद, देवलोक में गाकर सुनाएंगे। तीन लाख श्लोकों का महाकाव्य पितृ लोक के लिए होगा जिसको शुकदेव जी पितृ लोक में गाकर सुनाएंगे। भूतल के लिए, धरती के लिए, भूतल के मनुष्यों के लिए, एक लाख श्लोकों का महाकाव्य महाभारत प्रगट करने की मेरी इच्छा है।"

वेदव्यास विस्तार से उस महाकाव्य के विषय में ब्रह्मा जी को स्पष्ट करते हैं। तब "ब्रह्मा जी कहते हैं,:-वेदव्यास तुम्हारा ये महाकाव्य अद्भुद और विलक्षण होगा। युगों-युगों तक ये गाया जाएगा। भूमण्डल के मनुष्य तुम्हारे इस महाकाव्य की आरती और पूजा करेंगे। यह महाकाव्य कामधेनु गाय की भांति ज्ञान, विज्ञान तथा जीवन के सभी स्तरों को अधिक उन्नत करेगा। वेदव्यास जो इस ग्रन्थ में नहीं होगा, वह फिर कहीं नहीं होगा। हजारों वर्षों तक कवि काव्य लिखेगें। भाष्यकार भाष्य करेंगे और ज्ञान, विज्ञान के जानने वाले इसमें ज्ञान विज्ञान की अद्भुद धाराओं को पाएंगे। हजारों वर्षों तक लोग इसकी पूजा करेंगे। परन्तु वेदव्यास हजारों-हजारों वर्षों तक वे जानेंगे नहीं कि तूने कहा क्या है।"

इस संक्षिप्त कथा में जो कि महाभारत में, आरम्भ में ही आती है वेदव्यास, ब्रह्माजो को पात्र के रूप में प्रकटकर, हमारे सामने एक अद्भुद और एक विचित्र बात कह रहे हैं। महाभारत को भूतल के मनुष्य हजारों वर्षों तक पूजेंगे। आरती करेंगे ज्ञान और विज्ञान का यह अद्भुद समीकरण होगा। उनके जीवन का हर स्वरूप यहीं से उभरेगा और उनके जीवन के हर अंग को वे ही सजाए सवांरेगें। महाभारत ग्रन्थ के द्वारा कवि और भाष्यकार उसमें भाष्य करेंगे परन्तु यहां वेदव्यास हमें चुनौती दे रहे हैं ?

"मेरे ग्रन्थ की पूजा भी तुम करोगे। मुझे तुम ठुकरा भी नहीं पाओगे। परन्तु हजारों वर्षों तक तुम जान भी न पाओगे कि मैंने क्या कहा है।"

एक बड़ी ही विचित्र बात है बहुत से काव्य महाकाव्य, बहुत से कथाकार इतिहास के पन्नों में से उभरकर हमारे सामने आते हैं। आज तक एक से एक सफल लेखक हुए हैं। परन्तु किसी भी लेखक ने, किसी भी कथाकार ने, कभी भी हमें ये चुनौती न दी।

"कभी भी तुम मेरे ग्रन्थ को अस्वीकार नहीं कर सकते। परन्तु हजारों सालों तक तुम जान भी न पाओगे इस ग्रन्थ के रहस्य को कि मैंने कहा क्या है।"

ग्रन्थ के आरम्भ में ये चुनौतियां, देने वाले वेदव्यास की इस चुनौती को ही मानकर के हम भी श्री मद्भगवद्गीता में प्रवेश करें। हम इस बार वेदव्यास की चुनौती को यदि पूरी तरह से न भी जान सके, तो भी हम बहुत गहराई तक पैठ सकते हैं। और उन मोतियों को, उन जवाहररातों को, ढूंढ़ कर ला सकते हैं, जो इस श्रीमद्भगवद गीता में और महाभारत रूपी महासागर की तलहटी में वेदव्यास जी छिपाये हुए हैं।

दूसरी कथा और भी है। वह भी बड़ी विलक्षण है। जब ब्रह्माजी ने कहा कि इस ग्रंथ को अवश्य प्रकट करो। तो वेदव्यास ने ब्रह्माजी के सामने दूसरी समस्या रखी।

"भगवन् इस ग्रन्थ को मैं योग मार्ग से प्रकट करूंगा। ऐसे समय में लिख पाना मेरे, लिए संभव नहीं है। इसका लिपिक कौन होगा? इसका लेखक कौन हो? इस ग्रन्थ को लिखने वाला कौन होगा? ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया :—

"वेदव्यास जिसने वेदों के संकलन में तुम्हारे साथ सहयोग किया है वे भगवान विनायक, गणपति, श्री गणेश ही इस ग्रन्थ को लिखेंगे। वे ही इस महाकाव्य के लेखक होंगे।"

यह कहकर ब्रह्माजी वेदव्यास को आशिवाद देते हुए अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। तब वेदव्यास गणपति, गणेशजी, का ध्यान कर उनका आह्वान करते हैं। मंगलमूर्ति विनायक प्रकट हो जाते हैं। वेदव्यास उनके सामने इस महाकाव्य की रचना में उनके लेखन की, उनके लिपिक होने की, बात उनके सामने रखते हैं। गणपति मना कर देते हैं और कहते हैं :— "हमारे पास इतना समय नहीं है कि हम तुम्हारे पास बैठकर इस ग्रन्थ को लिखे।" वेदव्यास पुनः प्रार्थना करते हैं। ब्रह्मा जी ने उनको जो शब्द कहे हैं, उन्हीं शब्दों को दोहराते हैं। गणपति जी एक शर्त पर स्वीकार करते हैं कि वेदव्यास बोलते जाएं। गणपति लिखते

जाएंगे। लेकिन जहाँ वेदव्यास की वाणी रुकी और जहाँ गणपति जी की कलम रुकी, उसके आगे वे कुछ नहीं लिखेंगे।

वेदव्यास पूछते हैं:– "क्या आप हमको थोड़ा सा समय भी सोचने के लिए नहीं देंगे?" गणपति ने कहा–"एक क्षण का शतांश भी सोचने का समय नहीं दूंगा।"

तब वेदव्यास एक शर्त रखते हैं गणपति के सामने। "हे गणपति जी! आपकी इस शर्त को मैं स्वीकार करता हूं कि जहाँ मेरी वाणी रुकी, आपकी कलम रुक गयी। परन्तु मेरी भी एक शर्त है कि आप मेरे ग्रन्थ के आध्यात्मिक रहस्य को जाने बिना श्लोकों को नहीं लिखेंगे। जब तक कि आप उसका अन्तरनिहित सत्य, जो ऋतम् है; उसको जाने बिना आप भी इस महाकाव्य को नहीं लिखेंगे।" गणपति ने कहा यह शर्त भी हमें स्वीकार है।"

यह शर्त यहाँ केवल गणपति के लिए ही नहीं; हम सबके लिए भी तो है। क्या हमने सचमुच इस महाकाव्य के उन रहस्यों को जाना है? जो कि यहाँ गणपति और वेदव्यास में शर्त लग रही है? यदि हम इस ग्रन्थ को गणपति और वेदव्यास की शर्त के स्तर पर नहीं जान पाए। तो हमने भले ही इस ग्रन्थ से बहुत कुछ पाया हो; यह भी उतना ही सच है, कि हमने वेदव्यास की भावना को, वेदव्यास द्वारा दिये हुए इस अमृतमय ज्ञान को, अभी तक नहीं पाया है। वेदव्यास और गणपति में जब ये शर्त लगती है तो वेदव्यास जी पुनः गण-पति को सचेत करते हैं :–

"गणपति जी एक बार फिर विचार कर लो। इस ग्रन्थ के रहस्य को मैं जानता हूं। शुकदेव जानते हैं। संजय भी जानते हैं अथवा नहीं; मुझे इसमें संदेह है। इस धरती पर कोई नहीं जानता है। हे मंगलमूर्ति विनायक! आप भी नहीं जानते।"

इस चुनौती को भी गणपति स्वीकार कर लेते हैं वे कहते हैं "फिर भी मुझे तुम्हारी शर्त स्वीकार है।"

इस प्रकार दोनों शर्त से बंधे हुए, उस महाकाव्य की रचना करने बैठ जाते हैं। ऐसा कथा में आता है कि बारम्बार गणपति कलम थामें बैठे हैं और वेदव्यास जी पूछ रहे हैं। "हे विनायक अगले श्लोक भी बोल दूं क्या?"

भगवान गणपति उत्तर देते हैं :–"वेदव्यास ठहरो पहले मुझे इस श्लोक में दिये रहस्यों को जान लेने दो।"

कैसा रहस्य है ये ! कैसी रहस्यमयी कथा है । जहां स्वयं भगवान विनायक भी, जो कि ब्रह्मा के समान ही पूर्ण बुद्धिमत्ता के प्रवर्तक माने गये हैं, उनकी भी कलम रुक जाती है। यह वह ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ का रहस्य जानने के लिए हम सब श्रीमद्‌भगवद् गीता के इस महाकाव्य में प्रवेश करें । इस ग्रन्थ के रचयिता द्वारा दिये हुए रहस्यों को खोजने का प्रयास करें । श्रीमद्‌भगवद् गीता में हम सब प्रवेश करें ।

वेदव्यास जी महाभारत भगवान गणपति से लिखवा रहे हैं । ये क्रम चलता हुआ श्रीमद्‌भगवद् गीता पर आता है। वेदव्यास गणपति से कहते हैं कि वे लिखें 'धृतराष्ट्र उवाच:' अर्थात धृतराष्ट्र ने कहा ।

परन्तु गणपति कैसे लिख दें, "धृतराष्ट्र उवाच" शर्त के मुताबिक उन्हें धृतराष्ट्र कौन है ? उसका अपरिवर्तनीय सत्य अर्थात ऋतम् अर्थात वह सत्य जो किसी युग और किसी काल में नहीं बदलता है जो सर्व व्याप्त है ? इस सत्य को जाने बिना गणपति भी शर्त के मुताबिक लिख नहीं सकते हैं । विनायक सोचते हैं कि कौन है वह "धृतराष्ट्र" धृ धातु है । धृत माने पकड़ना, जकड़ना । राष्ट्र माने भूमण्डल । भूमण्डलों को पकड़ने, जकड़ने वाला, अपने पंजों में खेलने वाला, धृतराष्ट्र कौन है ? जो अंधा भी है ।

गणपति पुन: विचार करते हैं कि किसी भी व्यक्ति को उसके वंश वृक्ष से ही जाना जा सकता है । धृतराष्ट्र वैवस्वत मनु की संतानों में है । उनके ही वंशज कहलाते हैं । मनु कौन है? ७१गुणे४३२००० वर्ष के समय को एक मनु कहते हैं। मनु काल का ही नाम है । शतरूपा उसकी पत्नी है । काल पत्नी शतरूपा कौन है ? जो शत-शत रूप धारण किये हमारे चारों ओर प्रकृति है, वही काल अर्थात समय की पत्नी, अर्थात शतरूपा कहलाती है ।

जिस प्रकार आदमी का बेटा आदमी ही होता है। पशु की संतति यथा पशु होती है। उसी प्रकार काल के वंशज होने के कारण अंधा काल ही धृतराष्ट्र है। जिसकी पत्नी गान्धारी है। खूब सूरत आँखों वाली गान्धारी, परन्तु वह अपनी आँखों पर पट्टी बाँधती है । इसी को वह अपना पतिव्रत धर्म समझती है । स्वयं को अंधा करने वाली गान्धारी ही तो है ।

किसी अंधे व्यक्ति के साथ आँखों पर पट्टी बाँधना क्या पत्नी के लिए पतिव्रत धर्म हो सकता है ? अथवा अपनी ही आँखों को पति की आँखें बनाकर उनकी सेवा में लगना, उसकी पीड़ा को दूर कर स्वयं उसकी आँखे बन जाना । अन्धे के साथ अन्धा होकर जीना इसे

मैं भी तो अपने जीवन में पतिव्रत धर्म मान बैठा हूं। जबकि आँखों पर पट्टी बाँधना अपने ही पति का उपहास ही करना है। परन्तु गान्धारी अपनी आँखों पर पट्टी को बाँधना ही पतिव्रत धर्म समझती है। हम भी तो इस क्षण भंगुर जगत में अपने तथाकथित धर्मों को ही सर्वोपरि मान घट-घटवासी अजर-अमर अविनाशी आत्मारूपी कृष्ण को भूल बैठते हैं। गान्धारी की तरह पट्टियां बांधकर भौतिकताओं को ही सब कुछ मान बैटते हैं।

गणपति बिचारों में खोये हुए वेदव्यास की अनूठी पहेलियों के रहस्यों में उतर रहे हैं। सभी स्तरों पर अन्धे काल और आँखों पर पट्टी बाँधने वाली इस माया के खेल उनके सामने चलचित्र की तरह घूम रहे हैं।

—:o:—

आप महाप्रभुओं की श्रद्धा एवं भक्ति की बलिहारी है। श्रीमद्‌भगवद्‌ गीता एक ब्रह्माण्ड व्यापी सनातन दर्शन हैं। यह किसी सम्प्रदाय विशेष की पुस्तक नहीं है। सम्पूर्ण भूमण्डल, लोक-लोकान्तर, देव, ब्रह्म भी इसके विस्तार को पा सकते नहीं हैं। दिव्य चक्षु द्वारा ही इसके तत्त्व को पाया जा सकता है।

एक ओर हैं धृतराष्ट्र, गान्धारी के पुत्र कौरव और उनके सहयोगी सारे!

दूसरी ओर हैं पाण्डु, कुन्ती पुत्र पाण्डव और उनके मित्र सहयोगी सारे!

धृतराष्ट्र के सारथि हैं संजय! पाण्डु पुत्र के सारथि हैं कृष्ण!

एक सारथि संजय अपने महारथी अन्धे धृतराष्ट्र को सुनाता है कहानी–दूसरे सारथि कृष्ण की। इधर भी सारथि रहस्यों का अनावरण कर रहा है धृतराष्ट्र के लिये–उधर भी सारथि रहस्यों का अनावरण कर रहा है पाण्डुपुत्र अर्जुन के लिये।

अरे! यह लीला क्या है? कैसा है समर? क्या रहस्य है इसका! यह कैसा है धर्मयुद्ध? यहां महारथियों से अधिक महत्त्व सारथियों को मिल रहा है? आओ करें दिव्य–दर्शन!

पहले जानें धृतराष्ट्र को। यह अन्धा राजा कौन है? 'धृत' का शब्दार्थ है पकड़ना, जकड़ना 'राष्ट्र का अर्थ है सम्पूर्ण जड़-जीवन-चेतन! धृतराष्ट्र का शब्दार्थ हुआ–जिसने सम्पूर्ण जन-जीवन, जड़-चेतन को अपने पंजों में जकड़ा हुआ है। अरे! कैसा विचित्र है यह अन्धा राजा; जिसने जकड़ रखा है सम्पूर्ण जड़-चेतन को! कौन है यह?

पहचानो! मेरे माधववृन्द! अरे जानो––इस अन्धे धृतराष्ट्र को! यह काल है! समय है। जो अन्धा है। इसके आगे सब हारते हैं! जो जीतते हैं युद्ध––परास्त कर शत्रुओं को! यह 'काल' अपनी समय की अन्धी मार से––उसके साम्राज्यों को नष्ट कर देता है! उन्हें भी भस्मी में बदल देता है। वे इतिहास का अंग मात्र बनकर रह जाते हैं। अन्त में जीतता है यही समय, 'वक्त' 'काल'! जीतने वाला सम्राट भी; अन्त में भस्मी में बदल–सर्वहारा पराजय को प्राप्त होता है। अट्टहास करता है अन्धा काल धृतराष्ट्र]

यह अन्धा है क्यों? इसलिये कि इसके पास न्याय बोध नहीं है। राजा हो या रंक, पुजारी हो या व्यभिचारी, मन्दिर हो या मदिरालय––यह धृतराष्ट्र सबको एक ही गति से घटाता, क्षीण करता––अतीत के अन्तराल में फेंकता, इतिहास का अंग बनाता चलता है।

यह अच्छे-बुरे, ऊँच-नीच का भेद नहीं कर सकता है। इसकी अन्धी मार सर्वत्र समान है। यह अन्धा है।

कितना विस्मयकारी है बोध इसका! अन्धा धृतराष्ट्र--जकड़े है सम्पूर्ण जन-जीवन-चेतन-जड़ को ? कमाल है! इस अन्धे बाज के पंजों से कोई बच नहीं पाता है। प्रत्येक चिन्तक, विचारक, विद्वान, धर्माचार्य-पुनः पुनः इसी काल के पंजों में फंस जाता है। अरे! न कोई बच पाता है! इसकी कौन सी सम्मोहनी शक्ति है ? कैसे खींच रहा है यह ! कौन सी गुरूत्वाकर्षण शक्ति है ?

गान्धारी ! हाँ ! गान्धारी!! धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी!! महामाया! कौरवों की जननी! दुर्योधन, दुःशासन आदि मायाओं की माता! आंखों पर अपनी पट्टी बांध कर रखती है। सुन्दर विशाल नेत्र, हैं परन्तु अन्धी होने का स्वांग भरती है।

जानों रे मेरे बाल-गोपालों! इस महामाया गान्धारी को! बाँधती है पट्टी अपनी आंख पर--और अन्धा हो उठता है सम्पूर्ण जन-जीवन-चेतन! प्रत्येक बुद्धिमान, चिन्तक विचारक, वैज्ञानिक, राजा धर्माचार्य--सब अन्धे हो जाते हैं--आंखों के होते हुए! प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि आज भी भोजन से एक बूंद रक्त की बना नहीं सकता! एक बोरी भस्मी से एक दाना गेहूं का बना नहीं सकता। न कोई साथ आया है ; न साथ जायेगा मकान, दुकान, स्वजन सब यहीं धरे रह जावेंगे--और दुर्लभ जन्म मनुष्य का खोकर-चिता पर बदल भस्मी में--पानी का संग कर--डोलता-भटकता-सड़ता फिरेगा शरीर उसका! न पत्नी ही बदल पावेगी स्थिति उसकी, और न कोई स्वजन, धन-वैभव ही।

यह सब जानते हुए भी, गान्धारी की पट्टी के कारण चक्रवत् दौड़ता फिर रहा है छितरा के स्वर्ग जीवन का--राख के कण बटोर रहा है। आतुर है--चन्द मुठ्ठी राख में बदल जाने को! महामाया गान्धारी की पट्टी के कारण ही तो अन्धे धृतराष्ट्र के पंजों में फंसा है सम्पूर्ण जन-जीवन चेतन! इसी महामाया के कारण ही तो कोई निकल नहीं पाता है।

धृतराष्ट्र और गान्धारी के सौ पुत्र ही वे सौ प्रकार की लिप्सायें हैं जिनकी पकड़ में आ जाता है सम्पूर्ण जगत! धृतराष्ट्र के पुत्रों को श्रीमद्भगवद्गीता में "धार्तराष्ट्र" कहकर सम्बोधित किया गया है। इसके दो स्पष्ट शब्दार्थ हैं। प्रथम धृतराष्ट्र के पुत्र होने

धार्तराष्ट्र कहलाये। दूसरा और शुद्ध अर्थ है हंस से सुन्दर पक्षी जिनकी चोंच और पंजे काले हैं तथा जो मनुष्य, पशु, पक्षियों को नोंच-नोंच कर खाते हैं!

ऐसा क्यों? कौरवों की उपमा हिंसक परन्तु मोहक पक्षियों से क्यों की गई? वेद व्यास ऐसा क्यों कर रहे हैं?

इसका रहस्य क्या है? गणपति और वेद व्यास में शर्त लगी है। रहस्य को जाने बिना गणपति भी लिख नहीं सकते?

क्रमश: अगले अंक में

स्वागत! हे सखा मित्र?

★ डॉ. राजेश कुमार पाण्डेय
पी-एच. डी.

★ भगवान कृष्ण!
★ उनके मित्र, ग्वाल-बालाए और सखा,
★ भगवान कृष्ण का उनके साथ घूमना-फिरना, संगी-साथीं होना,
★ धार्मिक कथाओं के माध्यम से पता चलने पर मन आनन्दित होता है!
★ वह द्वापर युग की बात थी;
★ हम लोग कलयुग में है।
★ हम ग्वाल-बालाओं को भी आवश्यकता है एक कृष्ण ऐसे मित्र की
★ क्या आप को भी इस आवश्यकता की कमी खटकती है?
★ यदि हां!
★ तो स्वागत है,
★ आप आमन्त्रित है,
★ ग्वाल-बाल बनकर नृत्य रूपी उत्सव का अमृत पान करने के लिये!

★ इस देश में लाखों की संख्या में साधू, सन्त और सन्यासी
★ फिर भी देश इतना अशांत और आपदाओं विपदाओ का शिकार
★ जिस देश में सन्त पुरुषों की संख्या इतनी बड़ी हो
★ उस देश का कण-कण, चप्पा-चप्पा आनन्दित और प्रफुल्लित होना चाहिए।
★ परन्तु फिर भी ऐसा नही है।
★ एक प्रश्न चिन्ह?
★ ठहरो! ★ सोचो! ★ ढूंढ़ो!
★ एक स्थान पर ऐसा है,
★ जहाँ कि भूमि तपस्वी के तेज से तप रहीहै
★ उस धुरी-रूपी महापुरुष के बृताकार-रुपी तेज के अन्दर जो उपस्थित हुआ
★ जिसकी इन्द्रियां खुली हुई,
★ उसने आनन्द के साथ आतम साथ किया

★ स्वयं से पूछो
★ आवश्यकता तो नहीं तुमको इस आनन्द की ?
★ यदि हाँ !
★ तो स्वागत है,
★ द्वार खुला है,
★ आप प्रतिक्षित हैं !

★ ★ ★

★ एक तेज है
★ तू प्रकाशित करना चाहता है
★ तू रुपान्तरित होना चाहता है
★ तू कुछ और अलौकिक होना चाहता है
★ तू कुछ और आनन्दित होना चाहता है
★ तू सम्पूर्ण सन्तुष्टि चाहता है,
★ एक प्रयोग मात्र,
★ साथ बैठने का ।

★ ★ ★

★ जैसे कोई माँझी,
★ जो बोल-बोल कर मलहार भी सुनाए और पार भी लगा दे,
★ उसकी नाव किनारे खड़ी है ।
★ तेरा स्वागत है,
★ तू आ,
★ अनुभव कर,
★ कुछ मिला ?

★ ★ ★

★ तू चिन्तित है ?
★ दिशाहीन है ?
★ भटका हुआ है ?
★ इन सबका समाधान चाहता है !
★ बातों द्वारा सन्तुष्ट होगा ?
★ या
★ साथ मौन बैठ कर–
★ निश्चित और आनन्दित
★ यदि हाॅ
★ तो आ
★ तेरा स्वागत है आगन्तुक
★ हम सब तेरी राह देख रहे है ।
★ तू आ जा,
★ उत्सव को और अलौकिक बना

★ ★ ★

★ आप कितने सात्विक है ?
★ आप कितने मार्मिक है ?
★ आप कितने तार्किक है ?
★ आप कितने धार्मिक है ?
★ आप कितने श्रद्धालू है ?
★ आप कितने क्रोधी है ?
★ आप कितने शान्त है ?
★ आप कितने मौन है ?
★ चितंन करते हुए आंए,
★ स्वयम् से पूछते हुए आंए,
★ कृप्या आंए ।
★ आप जरूर आएं,
★ आप का स्वागत है !

आदि धर्म–सनातन धर्म

-श्री स्वामी सनातन श्री

(धारावाहिक)

"भरत-खण्ड" का आदिकालीन धर्म सनातन धर्म ही है । सनातन धर्म में नाना सम्प्रदायों का समावेश है । ये सम्प्रदाय १०० (सौ) से भी बहुत अधिक हैं । आज हम इस धर्म के विषय में चर्चा करेगे । सनातन धर्म में नाना ग्रंथ, धर्मग्रंथ के रूप में प्रचलित हैं। चारों वेद, ब्राह्मण ग्रंथ आरण्यादिक ग्रंथ, स्मृति, ग्रंथ, श्रुतियाँ, शास्त्र, पुराण आदि । ब्रह्मसूत्र, उपनिषद आदि अनगिनत ग्रंथ हैं । महा भारत, हरि वंश पुराण, श्री मद्‌भागवत, रामायण आदि ऐसे ग्रंथ हैं । जो सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित हैं। ईश्वर की मान्यता भी इस धर्म में बड़ी विचित्र है । ईश्वर एक है । "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति ।" सनातन धर्म की आदिकालीन अटूट मान्यता है । यही पर, ३३ करोड़ देवी-देवताओं की कल्पना-"एकोहम् बहुस्याम" के इस स्वरूप को भी धर्म आदिकाल से मानता चला आया है। ईश्वर के रूप में भी अनगिनत ईश्वर के स्वरूपों को नाना प्रकार की मूर्तियों और मन्दिरों के रूप में पूजने की आदिकालीन परम्परा रही है । एक ओर परमेश्वर को निर्गुण ब्रह्म के रूप में पूजते हुए भी उसकी सगुण स्वरूपा उपासना सनातन धर्म में आदिकाल से सर्वमान्य रही है। आज हम व्यापक रूप से इन विसंगतियों पर चर्चा करेगे । इस धर्म में एक आदि विलक्षण बात और भी है। नाना ग्रंथों की तरह नाना ऋषि, मनीषीजन, और विचारक समय के अंतरालों में प्रकट हुए हैं और उन्होने अपने-अपने मत व्यक्त किये । सनातन धर्म ने सबको धर्म पुरुष के रूप में स्वीकार किया। परन्तु उनके नाम पर धर्म चलाने की परम्परा को अस्वीकार कर दिया । यहां जितने भी ऋषि, मनीषीजन और संत हुए उन्होने सनातन धर्म से हटकर किसी धर्म की स्थापना भी नहीं करनी चाही । वे सम्प्रदायों को बनाने के पक्ष में भी नहीं रहे हैं । किसी भी संत और मनीषीजन के गोलोकवास के लम्बे काल के उपरान्त ही दासता के अंतरालों में सम्प्रदायों को सब कुछ मानकर, सम्प्रदाय चलाने की धारणाओं ने जन्म पाया हो ।

भारत के संत आदिकाल से बहुत ही निर्मल, इच्छा रहित और परहित में जीवन को उत्सर्ग करने वाले रहें हैं। इसीलिए सनातन धर्म विश्व के अन्य धर्मों से आदिकाल से अलग-थलग रहा है । भारत के संत ने ईश्वर की कल्पना भी जीव मात्र के शरीर में की है । उसे किसी अन्यत्र लोक में नहीं भेजा । सबमें ईश्वर आत्मा होकर बसते हैं । यही मान्यता सनातन

धर्म में आदिकाल से चली आ रही है। श्री राम हों अथवा भगवान श्री कृष्ण, महा विष्णु हो, महा-शिव हों अथवा महिषासुर मर्दिनी मां जगदम्बा हों, सभी यहाँ पर घट-घट वासी ही माने गये हैं।

इन सारे देवताओं के होते हुए भी, सम्पूर्ण ग्रंथों के रहते हुए भी, सनातन धर्म इन सारे धर्मग्रंथों को आध्यात्म के विश्वविद्यालय की पाठ्य-पुस्तक ही मानता है। इसीलिए धर्म ग्रंथ के रूप में प्रकृति को ही यहां धर्म का मूल ग्रंथ माना गया है, और ईश्वर की कल्पना सम्पूर्ण सचराचर में की गयी। परमेश्वर, ही आत्मा होकर प्रत्येक पेड़-पौधे को, पशु-पक्षियों को, देह-धारियों को, प्रकट करता है, इसलिए वह घट-घट वासी है। प्रकृति ही मूल ग्रंथ है जिसे स्वयं परमेश्वर, आत्मा होकर उत्पन्न करते हैं। जीवन्त सचराचर ही इस ग्रंथ के अक्षर है। जिन्हें भगवान आत्मा होकर निरन्तर प्रकट करते हैं।

सनातन शब्द का अर्थ है "नित्य", अजर-अमर। इस प्रकार सनातन शब्द सम्पूर्ण सचराचर से लिया गया। किसी सन्यासी के नामांतर धर्म चलाने की कल्पना यहां नहीं की गयी। प्रकृति और आत्मा द्वारा प्रकट हो रहा सम्पूर्ण सचराचर ही धर्मग्रंथ है। हम सब इस किताब के अक्षर हैं। इसी धर्मग्रंथ के अंग हैं। यही हमारे धर्म का स्वरूप है। यही सनातन धर्म है।

प्रकृति और पुरुष ही इस धर्म का मूल ग्रंथ है। उन्हें मानकर हमें अपने धर्म को धारण करना है। यहां किसी भी व्यक्ति की मोहर सनातन धर्म, धर्म पुरुष के रूप में, नहीं स्वीकारी गयी। संत, ऋषि और मनीषीजन इन धर्मग्रंथों को, पढ़ाने वाले आचार्य के रूप में ही प्रतिष्ठित हुए तथा वे ही जब हमको इस मार्ग पर चलने के हमारे अग्रणी बने। मार्गदर्शक बने, गुरु कहाये।

पूर्ण बौद्धिक परिपक्वता को सनातन धर्म ने सर्वोपरि माना है। आदिकाल से ही तर्कशास्त्र को धर्म के साथ जोड़कर मनुष्य मात्र को तर्क की कसौटियो पर संदेह निवारण का व्यापक अधिकार दिया गया। सनातन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसमें धर्म पर, मान्यताओं पर, यहाँ तक कि ईश्वर पर भी संदेह करने का अधिकार मनुष्य मात्र को दिया गया है। जो ईश्वर को नहीं मानते, ऐसे नास्तिक दर्शन को भी एक दर्शनशास्त्र के रूप में सनातन धर्म ने ग्रहण किया।

वर्तमान प्रवचन श्रृंखला में हम सनातन धर्म के स्वरूप व्यापक रूप से विचार करेंगे। प्रत्येक विषय पर संदेह रहित चर्चा करते हुए धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करेंगे।

क्रमशः अगले अंक में

सती-प्रथा
(कितना सच-कितना झूठ)

यदि धर्म ने सती प्रथा दी होती, तो दशरथ की तीनों रानियाँ जल न गयीं होतीं ?

सती प्रथा को लेकर राष्ट्रीय नेताओं ने एक विचित्र दुर्गन्धपूर्ण वातावरण उत्पन्न कर दिया है। रूपकुंवर की इस घटना को लेकर सारे देश में एक मानसिक तनाव सा उत्पन्न हो गया है। सती प्रथा की आड़ में भारत और भारती पर जमकर कीचड़ उछाला जा रहा है। ये सब उन्हीं के द्वारा हो रहा है, जिन्होंने अभी एक दूसरे सम्प्रदाय की नारी को जिसे सुप्रीम कोर्ट ने मानवीय अधिकारों से लाद दिया, उसकी चिता भीड़ भरी पार्लियामेन्ट में जला दी। वे नेता जो एक सम्प्रदाय की नारी को तो मानवता के, मनुष्यता के, अधिकारों से वंचित कर रहे हैं। दूसरी ओर रूपकुंवर के लिए घड़ियाली आंसू भी बहा रहे हैं।

ये सब घटनाक्रम सुनियोजित ढंग से इतने शीघ्र तथा व्यापक हुए कि सारा हिन्दू समाज सकते में आ गया। स्तब्ध रह गया।

प्रधानमंत्री से लेकर राष्ट्रीय नेताओं, सरकारी तंत्र तथा पत्र और पत्रिकाओं ने एक तूफान सा खड़ा कर दिया। भारत सरकार संविधान संशोधन पर भी उतर आयी। ये सब इतने सुनियोजित ढंग से हुआ कि सारा राष्ट्र इस धोखा-धड़ी का शिकार हो गया। मैं भारत के प्रधानमंत्री से एक सीधा प्रश्न पूछना चाहूँगा :–

"सम्पूर्ण भारत में एक परिवार का नाम वे बता दें मुझे। जहां उस घर की सारी विधवायें निरन्तर जलायी जाती रही हों ? एक परिवार सारे राष्ट्र में जानना चाहूँगा जहाँ सती प्रथा है।"

प्रथा उसे कहते हैं जिसका निरन्तर व्यापक चलन हो। जिस घर में रूपकुंवर ने देह दहन किया है उस घर में भी उससे पहले की बहुत सी विधवायें बैठी हुई हैं। उस घर में

भी सती प्रथा नाम की कोई प्रथा नहीं है, तथा सम्पूर्ण राष्ट्र में, किसी भी परिवार में, ऐसी कोई भी प्रथा प्रचलन में नहीं है। तब फिर एक घटना को लेकर सम्पूर्ण भारत-भारती, उनकी संस्कृति, धर्म और मानवीय दृष्टिकोण पर कीचड़ और गन्दगी क्यों उछाली गयी ?

संविधान संशोधन के कारण सारे विश्व में, पत्र-पत्रिकाओं में, तथा आम चर्चा का जो विषय है वह इस प्रकार है :– "भारत में हिन्दू नाम की एक बड़ी ही नीच, पतित जाति रहती है। जहां के लोग व्यापक रूप से अपनी विधवाओं को जला देते हैं। जब उस देश के कानून और व्यवस्था इस गन्दगी को नहीं रोक पाये, तो भारत सरकार को इस अमानवीय, नीच, हिंसक प्रवृत्ति को रोकने के लिए संविधान का संशोधन करना पड़ा। इत्यादि·............

भारत की संस्कृति के प्रति राष्ट्रीय नेताओं के इस अपराधपूर्ण षडयन्त्र को क्या क्षमा किया जा सकता है ?

रूपकुंवर चाहे जली। उसने आत्मदाह किया। अथवा उसको जला दिया गया। दोनों ही अवस्थाओं में उसके साथ जघन्य अपराध हुआ है। निःसन्देह रूपकुंवर की हत्या ही हुई है। यदि हम ये भी मान लें कि रूपकुंवर ने स्वेच्छा से अपने शरीर को अग्निगों को समर्पित किया है, तो भी उसके घर के लोग अपराधी ही माने जायेंगे। जब भी कहीं पर भी पति अथवा पत्नी में से किसी एक की मृत्यु होती है तो उसका पूरक एक दुखद तनाव में आ जाता है। उस समय घर के, परिवार के तथा समाज के हर व्यक्ति का यही प्रयास होता है कि उसे सांत्वना दी जाए। दुर्घटना को भुलाने में उसकी मदद की जाये, तथा उसके मानसिक तनाव को कम किया जाय। उसके तनाव को कम करने के लिए डाक्टर को भी बुलाया जाता है और वह नींद की दवाई भी देता है। और पुनः-पुनः देने की हिदायत भी कर देता है। जिससे वह सोता रहे अथवा सोती रहे। कुछ समय के उपरान्त जब ये भावनात्मक तनाव समाप्त हो जायेगा; तो अपने आप जो पूरक है वह स्वस्थ अवस्था को प्राप्त हो जायेगा। ऐसा व्यवहार लगभग सारे देश में सभी परिवारों में, सभी सम्प्रदायों में होता है। जब भी किसी का पूरक खो जाता है, उस अवस्था में वह टूट-टूट जाता है। तब घर के सभी लोग उसे सांत्वना देते हैं और सभी प्रकार का उपचार करते

हैं। प्रश्न उठता है रूपकुंवर के साथ भी ऐसा मानवीय व्यवहार होना चाहिए था। ऐसा क्यों नहीं हुआ ? और यदि ऐसा नहीं हुआ है, उसको रोका नहीं गया है तो निश्चित रूप से यह रूपकुंवर की हत्या ही मानी जायेगी और उसके परिवार के लोग दोषी कहलायेंगे।

परन्तु प्रश्न उठता है—कि रूपकुंवर के द्वारा अथवा उनके स्वजनों के द्वारा की गयी इस घटना को सती प्रथा की संज्ञा दी जा सकती है ? सती शब्द का अर्थ सत्य पर आरूढ़ होकर जीने से है, न कि जल मरने से। मैं आपसे भी एक प्रश्न पूछना चाहूंगा कि क्या सती अनुसूइया ने कभी आत्मदाह किया था ? कदापि नहीं ! तब सती शब्द का अर्थ हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने कहां से ढूंढ़ निकाला। सती सावित्री कहां जली थी ? वह तो अपने पति सत्यवान को भी यमराज से वापिस लौटाकर ले आयी थी। तब फिर आप उसे महा सती सावित्री क्यों कहते हैं ? सावित्री तो कहीं जली नहीं थी फिर वह सती क्यों कहलाती हैं ? इन सबसे स्पष्ट है कि सती शब्द का अर्थ सत्य पर आरूढ़ होकर जीने से है, न कि जल मरने से। फिर राष्ट्रीय नेताओं ने और हमारे इन महान विचारकों ने इस प्रथा का नाम सती प्रथा रखकर, 'एक व्यापक सत्य पर आरूढ़ होकर जीने की राह' को प्रशस्त करने वाले शब्द को; सती प्रथा कहकर इस शब्द का अपमान क्यों किया और भारत और भारती के मुंहपर कीचड़ उछालने का प्रयास क्यों किया गया ? क्या किसी राजनीतिक षड़यंत्र का ये शब्द शिकार हो गया है ? हम चाहेंगें कि हमारे पाठक भी इन पर गम्भीरता से मनन करें।

कहीं ऐसा तो नहीं कि एक अल्पसंख्यक सम्प्रदाय विशेष को खुश करने के लिए एक दुर्घटना को व्यापक आडम्बर देकर, हिन्दुओं के मुंह पर कालिख पोती गयी हो। शाहबानो काण्ड को लेकर शरीयत पर जो सारे देश में व्यापक चर्चाएं हुई। कहीं ये षड़यंत्र उसका बदला लेने का प्रारूप तो नहीं ? मैं मानता हूं कि ये उसी षडयन्त्र के तहत हुआ है।

प्रथा शब्द से हमारे राष्ट्रीय नेताओं को क्या तात्पर्य है ? प्रथा शब्द का अर्थ होता है, जिसका घर-घर में चलन हो। जो व्यापक प्रचलन को प्राप्त हो। जिसका सारा समाज और हर व्यक्ति आचरण करता हो; उसी को प्रथा कहते हैं। मैं पुनः आपसे एक प्रश्न पूंछना चाहूंगा कि आपके घर में कितनी विधवायें आज तक जलाई गयी हैं ?

आपके नगर में प्रतिदिन कितनी विधवायें चिताओं पर जलाई जाती हैं ? तब फिर आपने इसे प्रथा क्यों कहा ? ऐसी कोई घटना, कहीं एक दुर्घटना के रूप में, इक्का-दुक्का

राजा राम मोहन राय के काल में भी जो सती-प्रथा का चलन था उसका सही स्वरूप हम आपके सामने रखते हैं। अंग्रेजों की गुलामी का समय था। दासता और शोषण को प्राप्त भारत और भारती थी। अंग्रेज, एक सम्प्रदाय विशेष को, विशेष दर्जा देकर बहुसंख्कों को अपने नियंत्रण में रखने की राजनीति कर रहे थे। इस देश के बहुसंख्यकों पर अंग्रेजों के उपरान्त भी एक अल्पसंख्यक सम्प्रदाय का परोक्ष राज्य चल रहा था। सरकार उन्हीं को विशेष दर्जा देती थी। जैसा कि आज भी भारत में प्रचलन में है। भेदभाव की उस राजनीति का शिकार भारत और भारती थी। उन्हीं दिनों लगभग बारह वर्ष तक अकाल भी पड़ा। बिहार, आसाम और बंगाल के बहुत से क्षेत्र इससे बुरी तरह से प्रभावित थे। लोग भुखमरी का भी शिकार हो रहे थे। ऐसे समय में जब भी घर में कोई मर जाता था। उसकी पत्नी जब बाहर को दिशा-मैदान आदि के लिए जाती तो एक सम्प्रदाय विशेष के लोग उसे जबरन पकड़ कर अपने हरम में कर लेते थे। उस स्त्री के घर के लोग थाने आदि में रिपोर्ट भी करने जाते थे ; तो पुलिस उनकी नहीं सुनती थी। उसके ऊपर कोई कार्यवाही भी नहीं करती थी। केवल दिखावें के लिए लीपा-पोती करके रह जाती थी। इस प्रकार बहुसंख्यक संप्रदाय की विधवा स्त्री अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के लोगों के हरम में जाकर बस जाती थी। उसके पति की जमीन जायदाद पर भी उस सम्प्रदाय के लोग जबरिया काबिज हो जाते थे। उसकी जमीन जायदाद पर भी उनका स्वत: हक हो जाता था। इसके साथ ही उस परिवार के ऊपर एक गाज और भी पड़ जाती थी। बहुसंख्यक समाज उस परिवार का बहिष्कार कर देता था। अब उनके बच्चों तथा बच्चियों का विवाह भी समाज के प्रतिष्ठित लोगों में नहीं हो सकता था। उनका हुक्का-पानी भी बन्द हो जाता था। सरे दिन अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के वे ही लोग उनकी बहिन-बेटियों को छेड़ते थे। उनके घरों में घुसकर उन्हें अपमानित करते थे। उन्हें मजबूर करते थे। कि अपना धर्म परिवर्तन कर दें। अब उनका समाज उन्हें कदापि नहीं स्वीकारेगा क्योंकि उनके घरमें एक विधवा जबरन हरम जो हो गयी है। इस दुर्गति ने, इस पीड़ा ने, इस आतंक ने,भयाक्रान्त बहुसंख्यक लोगों में संभवत: इस प्रथा को जन्म दिया हो। परन्तु इसके लिए धर्म पर कीचड़ उछालना एक नितान्त असत्य है। एक षडयन्त्र है। एक अपराध है। और एक गुनाह है। बहुसंख्यक सम्प्रदाय के लोगों में इन्हीं पीड़ाओं के कारण सम्भवत: कुछ इलाकों में इस प्रकार की घटनाओं ने जन्म पाया हो।

मैंने व्यक्तिगत रूप से उन क्षेत्रों का दौरा करके देखा है। मुझे जो कुछ मिला वह इतिहास की कथाओं से बहुत दूर है। ये सत्य है कि ये घटना कि जिसमें विधवा द्वारा स्वतः सती होने की बात थी। परन्तु ऐसा नहीं था कि हर जगह वे विधवायें जल ही जाती थीं। घर के लोग, जब उनके घर का कोई मर जाता था, उसको लेकर गांव से बहुत दूर उसके दाहसंस्कार के लिए, चिता के लिए, उसको और उसकी पत्नी को भी सती होने के लिए सजाकर ले जाते थे। देर रात तक वह सती को लेकर भजन कीर्तन करते रहते थे। जब तक बाकी लोग लौट नहीं जाते थे इस प्रकार के कीर्तन भजन, चिता के समीप हुआ करते थे। गांव के तमाशगीर लोग जब लौट जाते थे तो वे लोग उस स्त्री के बालों को काटकर उसके पति के साथ जला देते थे। कुछ लोग विधवा को गाड़ी पर बैठाकर बनारस, मथुरा अथवा बृन्दावन ले जाते थे। उसे वहीं वैराग्य दिलवाकर भगवान के चरणों में, सेवा में छोड़ देते थे। इसका प्रचलन आज भी मथुरा, बृन्दावन और बनारस आदि में देख सकते हैं कि जहां पूरब से आयी विधवाओं के, समूह के समूह, आपको सड़कों पर, मन्दिरों के चारों ओर, बैठे पूजा करते हुए भजन करते हुए चारों ओर दिखाई देते हैं।

मैंने उनमें बहुत सी स्त्रियों से उनके पते पूछे और जब उनके घरों में उनके लोगों से पूछा कि तुम्हारी उस दादी का, उस बूढ़ी का क्या हुआ ? तो घर के मुखिया ने कहा वह तो अपने पति के साथ ही सती हो गयी थी। लगता है ये परम्परा कि विधवाओं को मन्दिरों की सेवाओं में लाकर छोड़ने की उसी काल में प्रारम्भ हुई। वे सम्भवतः छोड़ जाते थे कि हम लोग भी तो भूखों मर रहे हैं। तू यहां ईश्वर के सहारे, मन्दिर के सहारे जी ले। चूंकि वहां यदि किसी ने तुझे हरम में कर लिया तो तेरे भतीजों की, तेरी भानजियों को, तेरे पौत्रों और प्रपौत्रों का भी विवाह नहीं होगा। हम सब समाज से बहिष्कृत हो जायेंगे। हम सबको भी अपने धर्म का परित्याग करना पड़ेगा। लगता है इसी भावना ने, इस परम्परा को जन्म दिया। जिसे आज भी अपने चारों ओर देख सकते हैं। इनमें से बहुतों के घरों पर जब मैंने जाकर उन्हीं का नाम लेकर जानना चाहा कि वे कौन हैं ? वे कहां गयी हैं ? तो उनके परिवार के लोगों ने मुझे यही उत्तर दिया कि वे तो सती हो गयीं थी और वह अब नहीं हैं। मैं मानता हूँ कि इस प्रकार अपने ही घर के बुजुर्ग को असहाय अवस्था में मन्दिर की शरण में डाल देना एक जघन्य अपराध है। मानवता के नाम पर एक कलंक है। परन्तु लगता है कि इस पीड़ा को जन्म देने वाली उन परिस्थितियों को यदि हम सामने रखें, तो हम ऐसा करने वाले लोगों को भी पूर्णतया दोषी करार नहीं

दे सकते। आज भी ये प्रथा जो प्रचलन में है ये स्वयं स्पस्ट करती है कि उस समय की पीड़ाओं का, भय कितना अधिक रहा होगा। आज भी वह उस परम्परा को मानते ही नहीं, पूछने पर तुरन्त कह देते हैं कि वे तो सती हो गयी थी। इसलिए कि यदि वहां दूसरी जगह पर उनको किसी ने हरम कर लिया तो वहां गांव समाज के लोग तो नहीं जानेंगे कि वे किसी के द्वारा हरम में चली गयीं हैं तो उनका हुक्का-पानी तो बन्द नहीं होगा। उनके बच्चों का समाज से बहिष्कार भी नहीं होगा। आज भी वह पीड़ा उनके सुशुप्त मष्तिस्क में व्याप्त है। ये उनकी बातों से मुझे अब भी पता चला।

अतीत के उन पीड़ाओं के जख्मों पर मल्हम डालने के बजाये राष्ट्रीय नेताओं का सती प्रथा को लेकर पूरे धर्म संस्कृति और बहुसंख्यक समाज के मुंह पर कालिख पोतना कितना न्याय संगत है ? मैं आप सबसे इसके लिए न्याय करने की भी प्रार्थना करता हूँ। यदि धर्म ने यह प्रथा दी होती तो भारत की संस्कृति में, भारत के धर्म ग्रन्थों में भी कुछ बिधवायें जलायी गयी होतीं। परन्तु सारे धर्म ग्रन्थों में, मैंने कहीं पर भी किसी विधवा को जलाने की परम्परा को नहीं देखा।

उमा ने अपने पति का अपमान न सह सकने के कारण अपने पिता दक्षप्रजापति के यहां आत्मदाह किया। इसको कोई विधवा दहन प्रथा नहीं कह सकता। दूसरा उदाहरण हमें महाभारत में मिलता है- अम्बा ने पितामह भीष्म से बदला लेने के लिए चिता की लकड़ियों में अपने शरीर को जलाया। देह दहन किया। जिससे वह नर रूप में प्रकट होकर अगला जन्म ग्रहण करके, भीष्म का वध कर सके। इसको भी कोई विधवा दहन प्रथा अथवा आधुनिक सती-प्रथा नाम की संज्ञा नहीं दे सकता। तीसरी घटना जिसमें एक विधवा ने अपने पति के साथ अपने शरीर को जलाया वह भी महाभारत में आती है। महाराज पाण्डु की पत्नी माद्री ने अपने आप को अपने पति के शव के साथ जला दिया था। उस घटना को भी मैं यहां स्पष्ट कर देना चाहूँगा। महाराज पाण्डु का देहावसान होने के बाद उनकी पत्नी माद्री जब चिता की लकड़ियों पर जाने लगी तो उसे कुन्ती ने रोककर पूछा, "बहन ! माद्री मैं तुमको रोकुँगी तो नहीं। परन्तु मेरे एक सन्देह का यदि तुम निवारण कर दो बहुत अच्छा हो। पति की देह के साथ निज देह को जलाना क्या पतिव्रता धर्म का स्वरूप है ? अथवा पति को ही परमेश्वर जानकर उसी में समाधिस्थ होकर, शरीर धर्म को निभाते हुए तपस्याओं के द्वारा पति लोक को प्राप्त करना ?"

माद्री ने उत्तर दिया "कुन्ती! मैं इसके लिए आत्मदाह नहीं कर रही कि मुझे पति लोक की प्राप्ति हो। बहन! तुम मुझे बहुत गलत समझ रही हो। मैं किसी पतिव्रत धर्म के पालन हेतु अपनी देह को जला नहीं रहीं हूँ। मैं तो स्वयं को महाराज पाण्डु का हत्यारा मानती हूँ। ये जानते हुए कि महाराज पाण्डु को श्राप है। वे ऋषि के द्वारा अभिशप्त हैं। कि जब भी वे कामाशक्त होंगे उनके शरीर का पात हो जायेगा। वे अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे। ये सब जानते हुए भी मैं इतना क्यों सजी, इतना क्यों अपने आप को संवारा मैंने। महाराज पाण्डु ऋषि के श्राप को भूल कर मुझ पर मोहासक्त और कामासक्त हो गये। बहन! इसी आसक्ति ने तो उनको मृत्यु दी। इसीलिए मैं अपने आपको महाराज पाण्डु का हत्यारा मानती हूँ। हे कुन्ती! मैं भरतखण्ड की धरती पर हूँ। नारी हूँ! इसलिए मुझे कोई दण्ड नहीं देगा। तुम्हीं बताओं मेरे पापों का प्रायश्चित कैसे होगा? बहन! मैं अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए ही स्वयं को दण्डित कर रही हूँ।"

ऐसा कहती हुई माद्री चिता की दहकती हुई ज्वालाओं में प्रवेश कर गयी। इस को भी हम विधवा दहन की परम्परा की संज्ञा कदापि नहीं दे सकते हैं।

हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भारत की संस्कृति ने केवल नारी को नवदुर्गा ही नहीं माना; विवाह में पति चयन का अधिकार स्वयंवर में नारी को दिया। उसके साथ ही विवाह के समय पति पत्नी से जो यज्ञ मण्डप में कहता है। थोड़ा उस पर भी विचार कर लें। पति-पत्नी से कहता है—तुम मेरी पत्नी बनों। मेरीं सहभागी बनो। तुम अपना समपर्ण जो मुझको दे रही हो उसके प्रत्युत्तर में मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मेरी सम्पत्ति पर पहला अधिकार तुम्हारा होगा उपरान्त मेरा होगा। तुम अपना यज्ञोपवीत, गाण्डीव मुझे धारण कराओ। जिसे आज भी दुर्गा यज्ञोपवीत के रूप में, विवाह के समय पति को पहनाते हैं हम। तुम अपना गाण्डीव मुझे धारग कराओ तथा मेरे ऐश्वर्य की स्वामिनी बनो। मेरे वस्त्र-आभूषण पहनकर विवाह-मण्डप में आओ। पिता के वस्त्रों का परित्याग कर दो। वह पुनः प्रतिज्ञा करता है, कि मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि भौतिक जीवन में मैं सदा तुम्हें अपने बायें रखूंगा। कारण? इसलिए कि दायें हाथ से मैं संग्राम जो करूंगा तो तुझे सदा बायें रखूंगा। अर्थात् तेरे लिएभी इस जीवन रूपी संग्राम को मैं स्वयं लड़ूंगा। तो तुझको सदा बायें रखूंगा। तेरे लिए मैं तेरा कवच बनूंगा, ढाल बनूंगा। जो भी आघात होगा वह मेरे ही वक्षस्थल पर होगा। तू मेरे द्वारा, सदा मेरे बाम होने के कारण, आघात से निरापद रहेगी। भौतिक जीवन में तो मैं तुझे अपने से बायें रखूंगा। परन्तु ईश्वर की राह में,

पूजा में तू सदा मेरे दायें बैठेगी । ईश्वर पर, धर्म पर, मोक्ष पर पहला अधिकार तेरा होगा उपरान्त मेरा होगा ।"

जहां पुरुष ने पत्नी को ये सारे अधिकार दिये हैं वहां नारी को जलाने की कल्पनाओं को लाना अपने में कितना हास्यास्पद लगता है । आश्चर्य तो इस बात का है । इस देश की पार्लियामेन्ट और प्रधानमंत्री एक सम्प्रदाय विशेष की नारी को मनुष्यता के अधिकार से, एक ओर वंचित करते हैं । पार्लियामेन्ट में सुप्रीम कोर्ट के द्वारा दिये गये उसके अधिकारों से उसे निर्वस्त्र कर, उसकी चिता जलाते हैं । दूसरी ओर वह औरत को जलाने वाले को मृत्यु दण्ड देने की बात करते हैं । क्या हमारे राष्ट्रीय नेता और माननीय प्रधानमंत्री नारी और नारी में भेद करते हैं ? ऐसा लगता है कि गुलामी के अन्तरालों में जिस भारत और भारती का शोषण गुलाम बनाकर होता रहा है । उस गुलामी से अभी भी बहुसंख्यक बाहर नहीं निकल पाये हैं । वे अपने ही देश में अभी भी "बी" क्लास नागरिक ही माने जाते हैं ।

लंदन की प्रजातांत्रिक गवर्नमेन्ट, और वहां के धर्म ने नारी को पुरुष के पैर की जूती हो आदि काल से माना है । वहां के धर्म ग्रन्थ में, सौ से भी अधिक संशोधन हो चुके हैं । जिसके कारण आज जो नारी का स्वरूप लन्दन की गलियों में दिखाई पड़ता है, वह वैसा नहीं है, जैसा कि वहां के धर्म गुरुओं ने और यहां तक कि वहां के प्रजातांत्रिक सांसदों ने, और संसद ने उन्हें दिया था । सन् १६१८ तक लंदन की पार्लियामेन्ट ने औरत को मानवीय अधिकारों से वंचित रखा था । नारी को एक पशु की भाँति ही प्रजातन्त्र में वोट डालने का भी अधिकार नहीं था । "ऐमली" नाम की पहली महिला थी; जिसने नारी जाति के लिए संघर्ष का आरम्भ किया । ऐमली ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के लम्बे फाटकों के ऊपर अपने आप को जंजीरों से बांध कर टंग गयी । उसने घोषणा कर दी कि जब तक उनको मानवीय अधिकार तथा प्रजातन्त्र में मनुष्य होकर वोट के अधिकार नहीं प्राप्त होंगे । ऐमली अपने आप को वहां से हटायेगी नहीं । भले ही उसके प्राण चले जायें । तीन दिन, तीन रात तक ऐमली ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के फाटकों से टंगी रही । जब लगा कि वह मर जायेगी, वह निष्प्राण सी होकर जब झूलने लगी । लंदन की सड़कों पर, ब्रिटेन में हर ओर, जब औरतें हिंसक होकर सड़कों पर उतरने लगीं, तब पहली बार ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने औरत को वोट का अधिकार दिया । उसमें भी भेदभाव बरता गया । लड़का २१ वर्ष की आयु में वोट डालेगा, परन्तु औरत ३५ वर्ष की आयु के बाद ही वोट डालेगी।

ये कानून वहां भी बनाया गया था। आज से कुछ ही दिन पहले ईसाइयों के सबसे बड़े गुरू पोप ने अपना एक वक्तव्य निकाला है, जो सभी अखबारों ने छापा है कि औरत धर्म गुरू नहीं हो सकती। उसको पुरुष की भाँति अधिकार नहीं दिये जा सकते हैं। आज भी २०वीं सदी में औरत और पुरुष के भेद को वेटिकन सिटी ही नहीं मानती, सारा क्रिश्चियन समाज मानता है। जबकि आदिकाल से अदृश्यति लोपमुद्रा, गार्गी और मैत्रेई वेद के मन्त्र दृष्टा और धर्म गुरू रहीं हैं।

परन्तु हमारी माननीया महामन्त्राणी सुश्री मार्ग्रेट अल्वा सती प्रथा पर तो बहुत जोर से बोलती हैं। परन्तु पोप जान पाल के इस स्टेटमेन्ट पर जो कि धर्म गुरू ने वेटिकन सिटी से प्रकाशित किया है। उस पर एक शब्द भी बोलना नहीं चाहती। आश्चर्य है कि वे अपने को नारी नहीं मानती हैं। अथवा नारी और नारी के भेद को मानती हैं। मार्ग्रेट जी का कहना है– कि सती को महिमा मण्डित करने से और भी औरतों का जलने का मन होता है। इसलिए हमने संविधान का संशोधन करके ये कानून बनाये हैं। मैं मार्ग्रेट जी से पूछना चाहूँगा कि क्या ऐसी ही कुछ और कुप्रथाओं को वे संविधान में संशोधन करके वह मिटाना न चाहेंगी ? उदाहरण के लिए एक कुप्रथा है। कुवांरी माँ को महिमा मण्डित करने की। यदि सती को महिमा मण्डित करने से और लड़कियों का जल मरने का मन होगा तो क्या कुवांरी माँ को महिमा मण्डित करने से हर कुंवारी लड़की जो बस्ता लेकर स्कूल जाती हैं। माँ बनकर ही घर न लौटना चाहेगी ? क्या इस कुप्रथा के लिए सुश्री मार्ग्रेट अल्वा अपने सभी धार्मिक स्थानों से, उस कुंवारी मां की मूर्तियों को तुड़वाना चाहेंगी ?

मैंने कुंवारी माँ की पूजा को मानवता का सबसे ऊँचा उदाहरण सदा माना है। मैं सदा ही इसका प्रशंसक रहा हूँ। "अपने बेटे में तो हर कोई भगवान देख लेता है। परन्तु किसी बिना बाप के अवैध बेटे को सारे समाज ने ईश्वर का बेटा कहा है। यह मनुष्यता का सबसे ऊँवा उदाहरण है।" मैं ऐसा ही मानता चला आया हूँ। परन्तु मार्ग्रेट अल्वा जी की विचारधाराओं को देखते हुए आज तो कुंवारी मां को महिमा मण्डित करने से समाज में गन्दगी और दूषण को फैलाना ही तो होगा।

यदि सती को महिमा मण्डित करने से और औरतों को जल मरने का मन होगा। तो एक निरपराध को "क्रास" पर, सूली पर चढ़ाने से उसको महिमा मण्डित करने से

निरपराधों को फाँसी पर चढ़ाने की परम्परा न कहीं जन्म ले ले। इस पर भी हमारी मार्ग्रेट अल्वा जी यदि थोड़ा सा विचार कर लें तो अति उत्तम होगा।

क्या मार्ग्रेट अल्वा इस देश के बहुसंख्यकों को अभी भी लन्दन की प्रधानमंत्री महारानी मार्ग्रेट थैचर का गुलाम ही मानती हैं ?

माननीय प्रधानमंत्री के मंत्रिमण्डल और उनके सहयोगियों में लाबियों का बड़ा जोर है। जिसकी चर्चा हर ओर सुनने में आती है। एक क्रिश्चियन लाबी, तो दूसरी मुस्लिम लाबी, तीसरी आर्यसमाज लाबी, चौथी लाबी फारसी कितने प्रभाव में है मुझे पता नहीं। इन लाबियों ने मिलकर बहुसंख्यक लोगों के मुँह पर एक घटना को प्रथा बनाकर सारी दुनियां में कलंकित कर दिया है। राम और कृष्ण की मूर्तियों पर कोलतार पोत दिया है।

मैं ऐसी ही एक लाबी की महामंत्राणी से पूछना चाहूंगा कि क्या वे भी औरत को मिट्टी का खेत मानती हैं। औरत को मनुष्यता के अधिकारों से वंचित करना उसे दूषित कहकर मस्जिद में न घुसने देना। उसे सम्पत्ति तथा संतान के अधिकारों से वंचित रखना, सौतों और रखैलों के बोझ से उसे लादना और तीन तलाक के तीन तमाचों से उसे सड़क पर फेंक देना। ये सब वे सुप्रथा मानती हैं ? ऐसी पुस्तक को, जो नारी को, मनुष्यता के अधिकारों से वंचित करती है, उसको महिमा मण्डित करने की परम्पराओं को भी, इसी संविधान संशोधन में क्यों न ले लिया जाय ? काश ! वे मेरे इस विनम्र प्रश्न का उत्तर दे पातीं।

आर्य समाज लाबी की नेता, एक और महामंत्राणी जी, जो इस घटना को सारे हिन्दू समाज का कलंक बनाने में अत्यधिक मुखर रहीं हैं। में उनसे भी कुछ प्रश्न पूछना चाहूंगा। महामंत्राणी होने से पूर्व वे एक आर्य समाज के महाविद्यालय की प्रिंसिपल भी रहीं हैं। प्रश्न पूछने से पहले मैं ऋषि दयानन्द द्वारा सत्यार्थ प्रकाश में पारित नियम बताना चाहूंगा।

सत्यार्थ प्रकाश–चतुर्थ सम्मुल्लासः प्रश्न संख्या–१४१

प्रश्नः– नियोग अपने वर्ण में होना चाहिए या अन्य वर्णों के साथ भी ?

उत्तरः– अपने वर्ण या अपने से उत्तम वर्णस्थ पुरुष के साथ अर्थात् वैश्य स्त्री वैश्य, क्षत्रिय और ब्राम्हण के साथ, ब्राह्मणी ब्राह्मण के साथ नियोग कर सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि **वीर्य सम व उत्तम वर्ण का**

चाहिए, अपने से नीचे के वर्ण का नहीं। **स्त्री और पुरुष की सृष्टि का यही प्रयोजन है कि धर्म से अर्थात् वेदोक्त रीति से विवाह व नियोग से सन्तानोत्पत्ति करना।**

मेरा पहला विनम्र प्रश्न है कि क्या आप भी इस परम्परा को, जिसे आपके पूज्य गुरु ने प्रतिपादित किया है। क्या आप इसे मानवीय मानते हैं ? क्या ये राष्ट्र की नैतिकता और भारत के संविधान के अनुरूप है ? यदि अनुचित न लगे तो आप अपने व्यक्तिगत विचार तथा अनुभव भी स्पष्ट करने की कृपा करें ? दूसरा प्रश्न है कि इसमें महर्षि दयानन्द ने अन्तिम पंक्ति में स्पष्ट किया है :–

'स्त्री और पुरुष की सृष्टि का यही प्रयोजन है कि धर्म से अर्थात् वेदोक्त रीति से विवाह व नियोग से संतान उत्पत्ति करना "

सृष्टि का नियम है वहां तो यह सर्वमान्य सिद्धान्त हो जायेगा। असली आर्य समाजी वही होगा जिसकी मां वेदोक्त रीति से विवाह करे, परन्तु सन्तानोत्पत्ति नियोग से ही करे।

महर्षि दयानन्द द्वारा दी गयी इस महान शास्त्र परम्परा के प्रति भारत का संविधान और आप की सरकार विचार प्रकट करना चाहेगी ?

दयानन्द ने प्रत्येक नारी को पति के अतिरिक्त। (ग्यारह) पुरुषों से नियोग करने का सुन्दर उपदेश भी सत्यार्थ प्रकाश में दिया है। वे भारत के संविधान का संशोधन करने के लिए इस पर भी विचार कर लें।

छुआछूत के विषय में भी महर्षि दयानन्द के शब्दों का उल्लेख करना चाहूँगा। जिससे भारत के संविधान को उचित रूप से संशोधित किया जा सके।

सत्यार्थ प्रकाश दशम् सम्मुल्लासः प्रश्न संख्या–३५

प्रश्नः– कहो जी ! मनुष्य मात्र के हाथ की, की हुई रसोई, उस अन्न के खाने में क्या दोष है ? क्योंकि ब्राम्हण से ले के चांडाल पर्यन्त के शरीर हांड़-मांस चमड़े के हैं। और जैसा रूधिर ब्राम्हण के शरीर में है वैसा ही चांडाल आदि के। पुनः मनुष्य मात्र के हाथ की पकी हुई रसोई के खाने में क्या दोष है ?

उत्तरः– दोष है। क्योंकि जिन उत्तम पदार्थों के खाने-पीने से ब्राह्मण और ब्राह्मणी के हम शरीर में दुर्गन्धादि दोष-रहित रज-वीर्य उत्पन्न होता है वैसा चांडाल और चांडाली के

शरीर में नहीं। क्योंकि चांडाल का शरीर दुर्गन्ध के परमाणुओं से भरा हुआ होता है वैसा ब्राह्मणादि वर्णों का नहीं। इसलिए ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और चांडालादि नीच, भंगी, चमार आदि का न खाना। भला जब कोई तुमसे पूछेगा कि जैसा चमड़े का शरीर माता, सास, बहन, कन्या, पुत्रवधु का है वैसा ही अपनी स्त्री का भी है तो **क्या माता आदि स्त्रियों के साथ भी स्व-स्त्री के समान बताओगे** तब तुमको संकुचित होकर चुप ही रहना पड़ेगा। जैसे उत्तम अन्न हाथ और मुख से खाया जाता है वैसे दुर्गन्ध भी खाया जा सकता है, **तो क्या मलादि भी खाओगे ?** क्या ऐसा भी कोई हो सकता है।

आर्यसमाज की इस महान मान्यता के अनुरूप भारत के संविधान को भी संशोधित होना ही चाहिए। क्योंकि भारत सरकार अब मात्र लाबियों की सरकार रह गयी है। अच्छा हो कि भारत के संविधान का संशोधन कर लाबियों का संविधान बना दिया जाय।

भारत की संस्कृति पर तथा प्राचीन धर्म पर कीचड़ उछालना राष्ट्रीय नेताओं और राजनीतिज्ञों का एक धन्धा सा बना हुआ है। गुलामी के अन्तरालों में जो बहुसंख्यकों के साथ हो रहा था, नितान्त वही स्वतंत्र देश में भी हो रहा है। बाल विवाह को लेकर धर्म पर कीचड़ उछालना। पूजा की थाली लेकर टेलीविजन के ऊपर बूढ़ी को दिखाना। जैसे कि पूजा की थाली कह रही हो कि इस लड़की का बाल-विवाह कर दो। जबकि सत्य इसके ठीक विपरीत खड़ा है। मैं आपसे ही एक प्रश्न पूछना चाहूंगा आपने धर्म ग्रन्थों का कुछ भी यदि अध्ययन किया हो, तो आपने भी पाया होगा, कि किसी भी धर्मग्रन्थ ने २५ वर्ष से कम का ब्रम्हचर्य कहीं भी नहीं लिखा है। लड़का २५ साल तक ब्रम्हचारी रहे यही मान्यता आपको हमारे सभी धर्मग्रन्थों में मिलेगी। इसके साथ ही, आप इस बात को भी न भूलें कि इस देश में आदिकाल से स्वयंवर प्रथायें रही हैं। पति का चयन का अधिकार स्वयंवर में कन्या को ही रहा है। आप ही बतायें जब तक कन्या मानसिक रूप से परिपक्व नहीं होगी ; अर्थात् सयानी नहीं होगी, वह भारी भीड़ अपने पति का चयन कैसे करेगी स्पष्ट है कि इन दोनों प्रथाओं को सामने रखने पर, बाल-विवाह होने की परम्परा का यहां प्रश्न ही नहीं उठता।

तब प्रश्न उठता है कि इस देश में बहुसंख्यकों में बाल-विवाह कब, क्यों और कैसे शुरू हो गये ? इसका उत्तर है:– गुलामी के, दासता के अंधेरे अंतराल ! जब भारत और

भारती गुलाम बनी उसकी भोली बच्चियों से आतताई, विदेशी, अपने हरम सजाने लगे। भयाक्रान्त भारत और भारती को स्वयंवर प्रथाओं का भी परित्याग करना पड़ा तथा बाल-विवाह का सहारा लेना पड़ा। "जल्दी से विवाह कर दो; कहीं विदेशी उठा न ले जाये। मेरी बच्ची से कहीं अपना हरम न सजा ले।" इसी भय ने गुलामी के अन्तरालों में स्वयंवर प्रथाओं की हत्या करी। २५ साल के ब्रम्हचर्य को तिलांजलि दिलवाई और बाल-विवाह का सहारा दिया। आश्चर्य है कि राष्ट्रीय नेता बहुसंख्यकों की इस पीड़ा को, अतीत की इस भयंकर घुटन को, एक दिल्लगी, एक मजाक और एक खिलवाड़ के रूप में स्लोगन बनाकर, नारे बनाकर, बहुसंख्यकों के मुँह पर तमाचे मार रहे हैं।

इस प्रकार की, नाना प्रकार की दुर्गन्ध को बहुसंख्यकों को तमाचे, कोड़ों के समान उछालने की प्रवृत्ति राष्ट्रीय नेताओं में गुलामी के काल से आरम्भ होकर आज भी यथावत चल रही है। बहुसंख्यक आज भी राष्ट्रीय नेताओं की दया और कृपा पर इस देश का दूसरे श्रेणी का नागरिक बनकर जी रहा है। क्या यह सच नहीं है?

अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक की धोखा-धड़ी का शिकार भी बहुसंख्यकों को बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से बनाया जा रहा है। अल्पसंख्यक होने के नाते दूसरे सम्प्रदायों को अपने धर्म ग्रन्थ पढ़ाने का अधिकार है; जब बहुसंख्यक सम्प्रदाय यदि धर्म ग्रन्थ पढ़ा दे तो उन्हें हथकड़ियां लगा दी जायं। इस प्रकार की कुप्रथायें हमारे राष्ट्रीय नेताओं को अपनी राजनीति में तो दिखाई नहीं पड़ती हैं। बहुसंख्यकों के मन्दिरों का राष्ट्रीयकरण भी हो जाता है परन्तु अल्पसंख्यकों के मन्दिरों को महान पावन तीर्थ स्थान ही माना जाता है। ये भेदभाव की कुप्रथा भी हमारे राष्ट्रीय नेता नहीं देख पाते हैं। जो नितान्त उन्हीं की देन हैं।

सती प्रथा शब्द को लेकर भारत के संविधान का जो संशोधन हुआ है हम सब उसके औचित्य पर विचार करें। यदि हम मानते हैं कि सती प्रथा नाम की कोई प्रथा नहीं है, तथा सती शब्द सत्य पर आरूढ़ होकर जीने से है। उस अवस्था में हम सबको चाहिए कि हम राष्ट्रीय नेताओं को अपने सभी स्तरों पर पार्लियामेन्ट को अपनी चिट्ठियां लिखें कि इस कानून पर पार्लियामेन्ट, संसद पुनः विचार करे तथा सती प्रथा शब्द को हटाकर "विधवा दहन" शब्द का प्रयोग करे। चूंकि सती शब्द एक धर्म, एक संस्कृति के साथ जुड़ा हुआ है।

के कारण भारत की महान संस्कृति, क्या एक गन्दे और घिनौने स्वरूप में सारे विश्व में प्रकाशित नहीं हो रही है? दुनिया के लोग जो समझ रहे हैं क्या वह असत्य नहीं है? आप दोनों महान सन्त हैं। कृपया विवेक से काम लें। यही हम आपसे प्रार्थना करते हैं।

॥ ॐ नारायण हरिः ॥

इस समस्या को लेकर हम विचार लें, कि हम भारत सरकार को तथा संसद को इस दुर्गन्ध को मिटाने के लिए किसी प्रकार तैयार कर सकते हैं।

(१) सर्वोच्च न्यायालय में न्याय की पुकार करके। "सारे देश में एक परिवार में भी सती प्रथा नाम की कोई प्रथा नहीं है।" "संविधान संशोधन को सर्वोच्च न्यायालय अनुचित करार दे?"

(२) क्या हम राष्ट्रपति से अनुमति लेकर प्रधानमंत्री तथा भारत सरकार पर मुकद्मा कायम कर सकते हैं?

(३) प्रत्येक व्यक्ति को अन्याय से परिचित कराकर सारे राष्ट्र को इस स्तर पर जागरूक करना।

हम आप सबसे सभी प्रकार का सहयोग चाहते हैं। जिससे एक पुस्तक के रूप में प्रत्येक घर में हम पहुँच सकें। उसके लिए हमें आपके सभी प्रकार के सहयोग की परम आवश्यकता है। आप ये न भूलें कि हमारे पास न तो मिडिलिस्ट का गोल्ड है, और न पूंजी पति सरकारों के डालर। हमारे सहयोगी, संगी, साथी, आप सब हैं। इस महा अभियान में दिल खोलकर दान दें तथा इन पुस्तकों को मंगवा कर घर-घर तक पहुंचाने के इस महान यज्ञ में हमारे साथी बनें।

राजनीति के हाथों में हमारी अपनी धार्मिक सांस्कृतिक, और सामाजिक धरोहर को किस प्रकार पिछले चालिस सालों में हम सब लुटते देखते रहे हैं। आप उस पर भी विचार करें। क्या हिन्दूवादी राजनैतिक संगठनों के हाथ में भारत और भारती सुरक्षित है? अथवा जिन हाथों ने, बारह सौ साल की लम्बी गुलामी में भी, इस धर्म और संस्कृति को मिटने नहीं दिया, उन्हीं हाथों में इस धरोहर को सुरक्षित रखा जाय? वे हाथ सन्यासी के ही हैं। गुलामी के लम्बे अन्तरालों में यदि हम बहुमत में रहे, और सुरक्षित रहे तो इन्हीं तपस्वियों के कारण। हम अपने आप से ये भी पूछ लें कि हमने इस हाथों को कितनी शक्ति और सामर्थ्य प्रदान की? क्या इन हाथों को अत्यधिक सशक्त और मजबूत नहीं होना चाहिए?

हमारे हाथों की शक्ति और मजबूती आप पर निर्भर है। यदि धन हमारे पास होता तो आज आपको ये सब घुटन भी न होती। कृपया हमारे साथ जुड़े और संस्कृति की रक्षा करें।

★ ★

आप अपना सभी प्रकार का सहयोग हमें प्रदान करें! धन के द्वारा, मित्र मण्डलियाँ बनाकर, घर-घर जन, जागरण करें। जन-जागरण में लगी इस आश्रम की मासिक पत्रिका **"आदि भारती"** के आजीवन तथा वार्षिक सदस्य बनाकर। जिससे हम एक मासिक पत्रिका तक ही सीमित न रहें, वरन् सारे देश में समाचार पत्र और पत्रिकाओं का संचालन करके महा विनाश को जाति धर्म-संस्कृति को बचा सकें तथा विश्व में सम्मानित करा सकें।

★

स्वामी सनातन श्री

प्रमुख :— विश्व भारती संस्था,
श्री सनातन श्री आश्रम
कुर्सी रोड लखनऊ-७

७३७६७

(आदि भारती के सौजन्य से)

कृपया सभी प्रकार का धन क्रास ड्राफ्ट अथवा क्रास चेक के द्वारा ही भेजें। पोस्टल आर्डर तथा मनी आर्डर न भेजे, ड्राफ्त अथवा चेक क्रास या एकाउण्ट पेयी हों जो **"श्री स्वामी सनातन श्री"** के नाम पर ही देय हों।

आदि भारती मासिक पत्रिका की वार्षिक सदस्यता - १०१ रु०

आजीवन सदस्यता - ११०० रु०

समुद्रक प्रिन्टर्स, कुर्सी रोड, गौराबाग लखनऊ-७

पावन अभियान

भारत देश में, कुछ बच्चे, ऐसे भी जन्म लेते हैं, सभी धर्मों में, सभी वर्णों में, गरीब अमीर परिवारों में-जिन्हें जन्म के कुछ ही समय बाद घर की बूढ़ी दादी गला घोटकर मार देती है। एक महीन चीख, सिहरन और तड़फड़ाने के साथ, एक भोली निष्पाप जिन्दगी, मौत की नीली चादर ओढ़कर सदा के लिए सो जाती है। भारत, भारती, भारत-माता पीड़ा से कराह उठती हैं। मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा चकनाचूर होकर छितरा जाती है।

इन भोली मासूम जिन्दगियों का दोष ? प्रकृति ने (गुप्तांगों) इन्द्रियों के सुख से वंचित कर दिया है ! उसका दण्ड एक घुटन भरी मौत अथवा सीखचों में पिसती घुटन, भय आतंक भरी जिन्दगी जिससे छुटकारा मिला तो घृणा और उपहास बनी सड़कों पर नाचती जिन्दगी !

दोष इन भोले बच्चों का नहीं है। हारमोनों का खुला प्रयोग, अप्राकृतिक मैथुन तथा सैक्स में डूबी मानसिकता ही दोषी है। जिन सम्प्रदायों में यौन स्वच्छन्दता अधिक है वहां इन बच्चों का अनुपात भी सर्वाधिक है। दोष समाज का, दण्ड भोले नवजात शिशुओं को। उनकी हत्या मानवता की हत्या है। ईश्वर द्रोह है। जघन्य अपराध तथा कभी भी क्षमा न किया जाने वाला महापाप है।

श्री सनातन पीठ, श्री सनातन आश्रम की सम्पूर्ण सेवायें तथा उपलब्धियाँ इन्हीं बच्चों के सुखद भविष्य के लिए पूर्ण रूपेण समर्पित हैं। आप इन बच्चों को हमें सौप दें। ये कल के ईश्वर हैं। आप हमारे साथ सहयोग करके महापुण्य के अधिकारी हों।

इन बच्चों को उच्च शिक्षा तथा आत्मा का ज्ञान एवं आनन्द प्रदान कर समाज में; प्राणीमात्र को निष्काम सेवा तथा सम्मान सहित प्रतिष्ठित कराना हमारा संकल्प है। इनकी सेवाओं से समाज इनका सदा ऋणी रहेगा। ऐसे सर्वतोमुखी, सर्वहिताय सुखद भविष्य की कल्पना को हम आपके सहयोग से साकार करना चाहते हैं। वे सम्मानित हों, परमसुखी हों तथा उनकी अलौकिक सेवाओं से जन-जन अभिभूत हो।

आप हमें अपना सहयोग इस प्रकार प्रदान कर सकते हैं, हमसे मिलें। अपने विचार लिख भेजें। इन बच्चों के लिए जो कुछ भी आप भेजना चाहें, उसे सहर्ष भेजें। हमारे विचार और भावनाओं को जन-जन तक पहुँचाने में हमारे नित्य सहयोगी बनें ऐसे बच्चों को हमारे पास पहुँचाने का पुण्य लाभ लें।

कोई भी निष्पाप भोली जिन्दगी बेगुनाह मारी न जावे । इस महापुण्य की राह में आप अपना सभी सहयोग प्रदान करें।

श्री स्वामी सनातन श्री

सनातन आश्रम कुर्सी रोड, लखनऊ-७

फोन : ७३७९७

लव–कुश कथा रहस्य

मर्यादा-कथा

सप्त द्वीप पति असुरराज दशानन रावण के शव को लेकर मन्दोदरी बिलखती हुई चली गई है। प्रलय के तांडव को गिद्ध और कौवे, लाशों को नोचते, भयानकतम रंग दे रहे हैं। युद्ध समाप्त हो चुका है। जो हारे, सो हारे ! जो जीते, क्या वे सचमुच जीत गये ?

सीता जी को लिवाने लक्ष्मण और विभीषण जी बहुत समय पूर्व जा चुके हैं। अब लौटते ही होंगे। राघवेन्द्र एक अन्तर्युद्ध में दहलाये हुये हैं। यह युद्ध कहीं रावण युद्ध से भी भयंकर है। आज प्रश्न एक सीता का नहीं है। पति के लिए पत्नी की समस्या की चर्चा नहीं है। वरन् उससे जुड़ा है सामाजिक, धार्मिक, वंशानुगत मर्यादा का विकराल प्रश्न ?

श्री रामचन्द्र जी जानकी को स्वीकारें अथवा दूषित कहकर परित्याग कर दें ?

श्री राम को अपने और जानकी के हित में ही नहीं ! मर्यादा, समाज, धर्म, संस्कृति और नारी के हित में भी सूक्ष्म निर्णय लेना होगा ! जिस प्राण बल्लभा के लिए हर क्षण तड़पे, सिसके ! भयंकर युद्ध लड़े ! आघात सहे ! क्या उसे स्वीकार कर पावेंगे ? ओह !! मैं उस मनः स्थिति का वर्णन कैसे करूँ।

एक असुर द्वारा जबरन उठाई हुई अबला के प्रति समाज का, पति का धर्म और संस्कृति का, तथा पूर्ण मानवता का क्या व्यवहार होना चाहिए ? बात सिर्फ दो तक ही सीमित नहीं है, वरन् सम्पूर्ण मानवता की अग्नि परीक्षा के क्षण हैं। राघवेन्द्र ! सोचो ? क्या निर्णय है तुम्हारा ?

क्या उसे दूषित कहकर त्यक्त कर दोगे ? अथवा उसको अंगीकार कर समाज का सामना करने का साहस है तुममें ?

आज अग्नि परीक्षा है तुम्हारी ! लोक निन्दा, अपयश, व्यंग-कटाक्ष और समाज का उपेक्षित व्यवहार का भय है एक ओर ! तो दूसरी ओर सत्य, न्याय, यज्ञ की वेदी के सम्मुख संकल्पों की प्रतिष्ठा ! सब कुछ ! दांव पर लगी है ! राघवेन्द्र! क्या निर्णय है तुम्हारा ? ओह! क्या हो ? क्या हो??

बाहर से शान्त थिर गम्भीर ! भीतर भयंकर विचार-युद्ध का प्रलय ! राघवेन्द्र ! हे महान रघु के वंशज ! हे श्रेष्ठ भरत वंशी !! क्षण फिसल रहे हैं निर्णय के समीप हो ! बोलो ! तुम्हारी जानकी तुमसे मिलेगी अथवा अन्तिम रूप से त्यक्त होगी ? बोलो! क्या करोगे ?

ठहरो !! प्रश्न मात्र जानकी का नहीं ! परम्परा का है ! यदि आज जानकी त्यक्त होगी तो कल कितनी ही निरीह अबलाओं को आत्म-दाह करना होगा ? क्या यह मानवीय होगा ? क्या यह धर्म का न्याय होगा ?

राघवेन्द्र को लग रहा है जैसे उनके सारे शरीर से अग्नि ज्वालायें प्रस्फुटित हो रही हैं ! रोम-रोम ज्वालामय हो उठा है । अग्नि परीक्षा के क्षण हैं । मर्यादा पुरुषोतम अग्नि-परीक्षा में जल रहे हैं !

॥ नारायण हरि ॥

जानकी मिलन

अशोक वाटिका शोक सन्तप्प है आज ! असुरराज रावण अन्तिम पराजय को प्राप्त होकर मृत्यु निन्द्रा की गोद में सदा के लिए सो गये हैं । करुण क्रन्दन ! भय, आतंक, अनिश्चितता और सती होने की तैयारियों में उलझी रानियाँ !

एक पिघलता सा, उबलता सा दिन ! हर क्षण पहेली सा उलझता, हर साँस विचित्र अनजानी सी ? टूटे तार ! फूटे साज ! छितराये नूपुर !! कोई किसी को पहचान नहीं रहा है ।

लक्ष्मण जी ने जानकी जी के चरणों में सिर रख दिया है । अश्रु जल से उस परम तेजस्विनी, कृश-काय के चरण धोने लगे हैं । लिवाने का आवाहन है उनमें ।

जानकी स्तब्ध हैं ! मौन ! शिला सी ! जिस क्षण की कल्पना में हर क्षण तपीं ! आज वे क्षण ही असह रूप से भारी हो उठे हैं ! आह !! जिस सुखद मिलन की कल्पना

उसे जिलाये रही ! जिस आस में सांस रुकी नहीं, दिल धड़कता रहा ! वे सुखद क्षण इतने पीड़ायुक्त हो उठें हैं ।

जानकी ! ! तू उस महामानव का सामना कैसे करेगीं ? क्या समाज उसे तुम्हारे साथ जीने देगा ? समाज, उस पर कलंक और कीचड़ उछालेगा ! तेरा नाम लेकर उसे अपमानित करेगा ! क्या तुझे यह सब सहन होगा ? अपमान की पीड़ा से जब उसका मुख मण्डल बोझिल होगा ! क्या तू देख पावेगी ? महान रघु के वंशज क्या तेरे कारण लोक निन्दा को प्राप्त न होंगे ? जानकी ! जानकी ! !

जानकी स्थिर हैं ! जिस क्षण के लिए, हर क्षण जीवित रहने की कामना बनी रही, वही क्षण अब जिन्दगी को झुठला देना चाहते हैं ! सागर के किनारे नाव डूबना चाहती है ! अग्नि-परीक्षा के मार्मिक क्षण हैं !

अन्तर्मन दहक रही है "हा ! दैव ! ! कितनी अभागिन हूँ मैं ! हे माँ दुर्गा ! ! हे प्रलय की ज्वाला ! मुझे शक्ति दो ! प्राणेश के श्री चरणों का स्पर्श लेकर मैं अग्नियों में स्वयं को समर्पित कर सकूँ ! माँ शक्ति दो ! मैं अपना बलिदान देकर महान रघुवंश को लोक निन्दा से बचा सकूं । मां ! ! असुर राज ने मेरे जीने के सारे अधिकार नष्ट कर दिये हैं । अपने प्रभु के अन्तिम दर्शन का साहस दो मुझको ।"

डोली चल दी है । त्रिजटा आदि बहुत-बहुत कुछ कहती रही हैं । जानकी को धुधली-धुंधली सी स्मृति है । उसे तो बस इतना ही लगता रहा है कि उसका सारा शरीर दहकते अंगारों पर रखा हुआ है और सूखे उपलों सा उसका रोम-रोम जल रहा है । नेत्रों में अनायास प्राणेश के कितने-कितने रूप, भाव-भंगिमायें; अनियन्त्रित स्मृतियाँ ! बस यही सब कुछ तो ! एक ही चाह ! मात्र अन्तिम इच्छा । प्राणेश तुम में विचार स्थिर हो । तुम्हें देखती रहूँ टकटकी लगाकर और तन ज्वालाओं में शेष हो जाय ।

॥ नारायण हरि ॥

अग्नि-परीक्षा

"जानकी। बाहर आओ।"

चौंक उठी जानकी। ओह। राघवेन्द्र के शब्द। पर्दा उठाये राघवेन्द्र खड़े थे। जानकी उन्हें न जाने कितनी देर टकटकी बाँधकर देखती रह गई।

"जानकी तुमने कितना कष्ट सहा। अब दुःख के दिन समाप्त हो चुके हैं। उठो हम शीघ्र अयोध्या जा रहे हैं।

"राघवेन्द्र।" बस जानकी इतना ही तो कह पाई। नेत्र बरस उठे। उठी, बाहर आने को तो लड़खड़ा गई। राघवेन्द्र ने सहारा देना चाहा तो सर्वांग कांपकर रह गई। राघवेन्द्र चौंके।

"जानकी ? क्या तुमने हम दोनों को क्षमा नहीं किया ?"

"नाथ !!!" जानकी पुनः फफक कर रो उठी। "इस पापिन का स्पर्श न करें। जिसे बांह से पकड़कर नीच असुर ने घसीटा है। नारायण ! वह आपके स्पर्श के योग्य नहीं है।"

"जानकी ! तुम्हारे स्पर्श से असुर के पाप ही नष्ट हो सकते हैं। तुम अग्नि के समान सदा पवित्र हो।"

"स्वामी ! भावुकता का त्याग करें। इस अभागिन को अग्नियों का वरण करने की कृपा पूर्वक आज्ञा प्रदान करें। आपने अपने नाम एवं कुल की मर्यादा के अनुरूप पतित रावण को दण्ड दिया है। आपकी मर्यादा भी यही थी। परन्तु हे स्वामी ! आप केवल प्रेम के वशीभूत होकर यश, अपयश का विचार किये बिना इस अभागिन को अयोध्या चलने का आदेश कर रहे हैं। यह सम्भव नहीं है मेरा घर तो मेरे सम्मुख धधकती ज्वालायें हैं। प्राणेश। एक ही भिक्षा चाहती हूँ। एक ही चाह है। लपटों से आपको निहारती ही रहूँ। विचार आप में ही खड़ा रहे, फिर-फिर आपके चरणों की सेवा मिले !"-----

"जानकी। ऐसा नहीं होगा। तुम अग्नियों का वरण नहीं।" -----

"सूर्यकुल मणि। कृपा पूर्वक आज्ञा प्रदान करें। जानकी, महान, रघुकुल का कलंक बनकर एक क्षण भी जीना नहीं चाहेगी। सब शेष हो चुका है स्वामी। ज्वाला के अति-

रिक्त अब कुछ भी शेष नहीं है। ये ज्वालायें ही पापों का प्रायश्चित हैं। यही पावन गंगा है।"

राघवेन्द्र समझा रहे हैं परन्तु महान जानकी ज्वालाओं का वरण करने को आतुर हैं! उन्होंने सच्चे मन से सबको क्षमा ही नहीं कर दिया है वरन् सभी विचारों का भी परित्याग कर एक "श्री राम" रूपी विचार में एकाग्र हो चुकी हैं। दूर लक्ष्मण जी एवं विभीषण जी आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़े हैं। दृढ़ता पूर्वक जानकी ज्वालाओं की ओर बढ़ती हैं। राघवेन्द्र की आवाज भी मानों उन तक नहीं पहुंच रही है। वे लपटों में प्रवेश कर ही जाती हैं राघवेन्द्र तत्क्षण उन्हें बलपूर्वक बाहर खींच लेते हैं। राघवेन्द्र की मुख मुद्रा शान्त है। वाणी गम्भीर एवं स्थिर है, "जानकी। राघवेन्द्र मात्र प्रेम के वशीभूत होकर तुम्हें अग्नि-प्रवेश से नहीं मना कर रहे वरन् समाज, धर्म, मर्यादा और मानवता के हित में तुम्हें अग्नि-दाह से रोक रहे हैं। जानकी। आज अकेली तुम ही नहीं जलोगी। युगों तक निरीह भोली अबलायें जलती रहेंगी। उस सारे पाप का कारण हम और तुम होगे।"......

"राघवेन्द्र। मैं कुछ सोच नहीं पा रही हूँ। मेरे कारण आय कलंकित हों, यह विचार ही असह है।"......

"हमारे कारण युगों तक अबलायें; निरीह और निष्पाप जलती रहें। समाज एक गलत अमानवीय परम्परा को धारण करे। ऐसा भी तो असह है।"

'राघवेन्द्र! मैं कुछ सोच नहीं पा रही हूँ। भ्रमित हूँ।"

"जानकी! मैं सत्य की राह पर हूँ। मेरा साथ दो।"......

"प्रभु! एक वचन दो। जब कभी भी किसी ने मेरा नाम लेकर महान रघुवंश को अपमानित करना चाहा; आप तत्क्षण मेरा परित्याग कर देगें।"

"यदि तुम चाहती हो तो मैं वचन देता हूँ। जानकी मुझे पूर्ण विश्वास है कि समाज हमारे द्वारा प्रतिपादित मर्यादा का पूर्ण सम्मान करेगा। राम स्वयं को समाज पर थोपना भी नहीं चाहेगा। यदि समाज हमारी मर्यादा को नहीं स्वीकारेगा तो राम तुम्हारे साथ ही समाज का भी त्याग करेगा।"

तभी ज्वालाओं से अग्नि देव प्रकट हुये। उनकी देह से सहस्त्र मणियों की कान्ति प्रस्फुटित हो रही थी। उन्होंने दोनों को सम्बोधित करके कहा, "जानकी! तुम पवित्र

एवं निष्पाप हो । तुम्हें मेरी अग्नियाँ कभी जला न पावेंगी ? हे राम ! तुम सत्य हो ! मर्यादा-पुरूषोत्तम धरती तुम्हें सदा पुकारेगी ।"

हे राम !

श्री राम अवध में

श्री रामचन्द्र जी अवधेश सुशोभित हुये हैं । प्रजा आनन्द मग्न है । श्री भरत जी के सुख की सीमा कहाँ ! पिछली पीड़ायें मिटती जा रही हैं । समय पुराने घाव भर गया है ।

श्री रामचन्द्र ने लंका को जीतने के उपरान्त, उसका सिंहासन विभीषण को सौंप दिया था । भरत महान की, वरद संस्कृति के पुत्र, आधीनता में विश्वास नहीं करते । पूर्वी पाकिस्तान को जीतने के बाद भारतीय सेनायें बंगला देश की नई सरकार को बाग-डोर सौंपकर लौट आई थी । किसी को पराधीन बनाने में वीरता नहीं है । निरीह, निर-पराध, भोले पुरुषों को गुलाम बनाना भारत की संस्कृति में कायरता ही नहीं, महापाप है । परमेश्वर को दी गयी गाली के समान है । अबलाओं को जबरन पकड़कर बैश्या बनाकर बेचना अधर्म है । मनुष्यता से गिरा हुआ ईश्वर का आदेश नहीं हो सकता । वह तो शैतान की ही पूजा होगी । रामचन्द्र से आज स्वतन्त्र भारत देश की वर्तमान कथा, तक; भारत देश ने महान मूल्यों का ही पालन किया है । विश्व के दूसरे धर्मावलम्बी असुरत्व से प्रेरित, तथाकथित ईश्वरवाद की बात को करते रहे, परन्तु उनके गन्दे हाथ मानवता को गुलामी में जकड़ कर ईश्वर वाद का अपमान ही करते रहे । मनुष्यता को गुलाम बनाने वाले, ईश्वर और धर्म के हत्यारे ही तो हैं । गुलाम ईश्वर ही तो हो रहा था । काश वे मनुष्य बन पाते और अपने अन्तर में झाँक पाते ।

समय पंख लगाये उड़ा जा रहा है । श्री राम को पाकर सरयू के तट महक उठे हैं । तीन वर्ष बीत गये हैं । (यहाँ बहुत से कथाकारों ने समय नहीं दिया है । परन्तु अन्य ने अलग-अलग समय बताया हैं जो कि तीन वर्ष से सात वर्ष के भीतर हो है ।) राजा राम की नगरी असीम सुख और आनन्द को प्राप्त है ।

अभी पौ फटने को शेष है। पूरब में मोहक स्निग्ध छटा सी आभासित हो रही है। राघवेन्द्र जानकी जी के साथ प्रातः भ्रमण हेतु रथ पर निकले हैं। राघवेन्द्र स्वयं रथ हांक रहे हैं। जानकी जी उनसे रास ले लेती हैं। अब वे रथ हांकने लगी हैं। उनकी मोहक मुस्कान, नेत्रों में जगमग लहराते, प्रेम के मोतियों का अक्षय भण्डार। क्षण-क्षण रस बरस रहा है। जानकी जी गर्भवती हैं। मातृत्व उनके अंगों से प्रस्फुटित होकर उनके सौन्यर्य को सहस्त्र गुणा बढ़ा रहा है। रथ नगर की गलियों से निकलकर सरयु के तट पाने को बढ़ता जा रहा हैं। तभी......

"तुम समझती हो कि मैं तुम्हें घर में रख लूँगा ? नीच। रात भर किसके साथ रही ? बता ?"

"स्वामी मुझ पर दया करो। मैं निरपराध हूँ।"

"जा–जा। मैं राम नहीं जो तुझको घर में बसा लूँ। दुष्टे। निकल जा।"......

रथ रूक गया है। धोबी अपनी पत्नी को डांट रहा है। जानकी स्तब्ध खड़ी सुन रही हैं। उनके नेत्र छलछला आये हैं। राघवेन्द्र घोड़ों की रास उनसे लेकर रथ तेजी से आगे बढ़ा ले जाते हैं। परन्तु जो होना था, वह तो हो ही चुका है। गहन विषाद की छाया जानकी के चेहरे पर नाचने लगी है। दोनों मौन हैं। रथ आगे बढ़ता जा रहा है। दोनों के अन्तर में तूफान उठ रहा है। जानकी को उनके ही शब्द...... "एक बचन दो। जब भी कोई मेरा नाम लेकर महान रघुवंश को कलंकित करेगा; आप तत्क्षण मेरा परित्याग"......

न जाने कितनी बार यह वाक्य दोनों के अन्तर्मन में गूंजते रहे हैं। मौन फिर मौन ही बनकर रह गया है। दोनों फिर आपस में कहां बोल पाये हैं।

राघवेन्द्र सारा दिन विचारों में ही खोये रहे हैं। "जानकी। काश। तुमने वन की बात न की होती। मेरे बिना तुम कैसे जी पाओगी ? राघवेन्द्र अब तुम क्या करोगे ? क्या अपने वचन से विमुख हो जाओगे ? फिर तुम यह भी क्यों भूलते हो कि तुम मात्र एक पति ही नहीं वरन् अयोध्या के सम्राट भी तो हो ? जब तुम जन-जन के सम्मान के अधिकारी हो तो उनके सन्देहों का उतना ही उत्तरदायित्व तुम पर भी तो है ? बोलो ? क्या निर्णय है तुम्हारा।

राघवेन्द्र विचारों में खोये बस टहलते रहे हैं। बात सिर्फ एक धोबी की ही नहीं; वरन समाज एक वर्ग ने श्री राम की मर्यादा को समाज के विपरीत माना है तथा वे

कानाफूंसी करते रहे हैं। उनके मत से इस प्रकार की मर्यादा नारी को उच्छंखल बनने का साहस देगी और समाज दूषित हो जावेगा।

जानकी की भी वही स्थिति है। "काश" ! राघवेन्द्र ! तुमने मुझे स्वयं को अग्नियों को समर्पित करने दिया होता ! आज तुम इतने बड़े अपमान को तो न प्राप्त होते। रघु के महान वंशज ! तुम्हारी लोक निन्दा और अपमान का कारण मैं बनी। ओह......काश ! राघवेन्द्र......तुम कुल की मर्यादा के अनुरूप आचरण कर पाते। देव ! तुम अपने वचन को पूरा कर पाते। आह ! जानकी ! तेरे बिना राघवेन्द्र कितने उदास होंगे। महलों का सूनापन क्या उन्हें जीने देगा......जानकी......तू भी क्या राघवेन्द्र के बिना जीवित रह पावेगी?"

दिन यूं ही ढला है। रात और भी अधिक पीड़ा और व्यथा को लेकर उतर आई है। राघवेन्द्र उद्यानों में रात भर टहलते रहे हैं और जानकी जगदम्बा के मन्दिर के ठण्डे फर्श पर। दोनों तड़प रहे हैं। दोनों व्याकुल हैं। दोनों एक दूसरे को सांत्वना देना चाहते हैं। परन्तु एक दूसरे का सामना करने का साहस दोनों में नहीं है।

और इन क्षणों के वर्णन का साहस, अब इस सन्यासी में भी तो नहीं है।

हे राम !

लक्ष्मण को आदेश

"लक्ष्मण। आज फिर, जानकी को वन जाना होगा। तुम उनको लेकर जाओ। महर्षि बाल्मीकि की कुटिया के समीप छोड़ देना। जब पूछें। ऐसा क्यों ? तो कह देना सम्राट राम का यही आदेश है।"

"भैया !! उनका अपराध ?" लक्ष्मण जी को मानो अपने कानों पर विश्वास ही न रहा हो।

"अपराध ?" राघवेन्द्र चौंके। पुनः थिर गम्भीर होकर कहा, "जानकी का अपराध? नहीं...... राज दण्ड दिया गया है।" राघवेन्द्र ने कहा।

"क्या मैं सम्राट श्री राम के दण्ड के कारण को जानने की याचना कर सकता हूँ? अपराधी को उसका अपराध बताये बिना दण्ड घोषित करना तो अनुचित होगा।"

लक्ष्मण जी की वाणी में व्यंग का तीखापन है। राघवेन्द्र शान्त हैं।

"लक्ष्मण ! प्रजा ने मेरी मर्यादा में सन्देह प्रकट किया है। जनादेश की अवहेलना नहीं हो सकती। जानकी को मुझसे त्यक्त होकर तापस वनवासी जीवन ही बिताना होगा।"

"भैया...... जिनकी अग्नि-परीक्षा हो चुकी है। जिन्हें स्वयं अग्निदेव ने प्रकट होकर वरद किया तथा जिस महान मर्यादा का स्वयं अग्निदेव ने अनुमोदन किया। जिस मर्यादा का आपने स्वयं प्रतिपादन किया है। आज आप उन्हीं को खण्डित करना चाहते हैं। क्या यह अनुचित नहीं है ? सिर्फ इसलिए कि कुछ प्रजाजनों ने उनमें अविश्वास"......

"लक्ष्मण ! काश...... मैं इस देश का सम्राट न होता और जानकी सम्राज्ञी न होती तो उनको वन नहीं जाना होता। जब जन-जन की आस्था और सम्मान के हम अधिकारी रहे हैं तो उनकी अनास्था का उत्तर देना भी तो हमारा कर्तव्य है। लक्ष्मण। जानकी को वन जाना ही होगा।"

"राघवेन्द्र ......जानकी तो तभी अग्नियों का सम्मानपूर्वक वरण करना चाहती थी। आपने ही उन्हें रोका था। आज जब जानकी परित्यक्ता होकर लोक निन्दा और जग हंसाई का कारण होगीं तो क्या आपका यह न्याय होगा ? आपके और रघुवंश के सम्मान के लिए क्या यह उचित होगा ? मैं आपकी आज्ञा का पालन नहीं करूंगा"

लक्ष्मण जी ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

"लक्ष्मण......यह भाई राम की आज्ञा नहीं; सम्राट राम का आदेश है। राजाज्ञा की अवहेलना कदापि सहन न होगी।" राघवेन्द्र ने कहा।

राघवेन्द्र की मुखमुद्रा अति कठोर हो चुकी थी। प्रत्येक शब्द घन के प्रहार के समान कठोर था। लक्ष्मण जी सर्वांग कांप उठे। नेत्रों से अश्रु छलछला उठे।

"भैया ! अब मैं कुछ न कहूँगा। आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। भैया...लक्ष्मण मर चुका।"

लक्ष्मण जी तेजी से घूमे और बाहर निकल गये। काश......लक्ष्मण पलटकर देख पाये होते श्री राम के विशाल नेत्रों में लहराते आंसुओं की घनघोर घटाओं को।

नारायण हरि !

जानकी वन गमन

लक्ष्मण जी जब जानकी जी के पास गये तो लगा जैसे जानकी जी उन्हीं की प्रतीक्षा में तैयार बैठी हुई थीं। उनकी देह पर कोई भी अभूषण नहीं था। शान्त, गम्भीर मुख मुद्रा! शान्त, स्थिर नेत्र! संयत वाणी! वे उठीं और लक्ष्मण के साथ चल दीं! दोनों रथ पर बैठे। अभी प्रभात नहीं हुआ था। अन्धरों को चीरता रथ नगर से बाहर चल दिया। जानकी ने कुछ भी न पूछा-कुछ भी तो न कहा-लक्ष्मण जी बाहर अन्धेरे की ओर मुंह किये सिसक उठे–माँ-आज मैं तुम्हें कहाँ लिए जा रहा हूँ ? किसके सहारे......

कई स्थानों पर घोड़ों ने विश्राम लिया। जानकी निर्विकार भाव से मौन रहीं। लक्ष्मणजी चाहकर भी कुछ कहने का साहस न बटोर पाये। बाल्मीकि के आश्रम के समीप जानकी जी रथ से उत्तर पड़ीं। लक्ष्मण की धैर्य शक्ति समाप्त हो गई! दौड़कर उनके चरणों लिपट पड़े। फूट-फुट कर रोने लगे!
"माँ......"बस इतना ही तो कह पाये लक्ष्मण---

"लक्ष्मण-धैर्य धारण करो-महान क्षत्रिय इस प्रकार विचलित नही होते ---" जानकी ने उनके सिर पर हाथ फेरते हुए समझाया।

"माँ- मैं सम्राट श्रीराम से कह आया हूँ कि लक्ष्मण मर चुका है मुझे अपने चरणों में स्थान दो-मैं लौटकर अयोध्या नहीं जाऊँगा---"

"नहीं लक्ष्मण-तुम ऐसा क़दापि नहीं करोगे–लक्ष्मण–राघवेन्द्र को तुम्हारी अत्यधिक जरूरत है। उन्हें दण्ड मत दो–उनका हृदय खण्ड-खण्ड हो चुका है। उन्होंने, जो परम उचित था वही किया है। मेरे बिना उन्हें कितना कष्ट होगा-सूने महल उन्हें कितना सतावेंगे–सुबह सूनापन लिए जगावेगी उनको–दिन राज-काज में किसी तरह काट लेगें। परन्तु साँझ की खामोशी......? नहीं लक्ष्मण --नहीं--देखना–राघवेन्द्र कहीं टूट न जायें–लक्ष्मण-उन्हें सहारा देना–बस-तुम अभी लौट जाओ-मेरे आदेश की अवहेलना न करो-यथा शीघ्र जाओ राघवेन्द्र व्याकुलता से तुम्हारी राह देखते होंगे–अब एक शब्द भी न कहो--चले जाओ लक्ष्मण ---तुम्हें जानकी की सौगन्ध........"

लक्ष्मण जी आँसुओं से महातपस्विनी के चरण धोते, हिचकियाँ लेते रथ पर बैठ गये हैं–रथ पलट कर चल दिया है। जानकी वन में खड़ी, धुंधले होते रथ को एकटक देखती रहीं। रथ ओझल हो गया–जानकी के नेत्र बरस उठे-वह सांझ वन की कितनी उदास थी–जानकी–तू कहां–कौन है तेरा---सारा अतीत सिमट कर शून्य बन गया--वर्तमान मात्र एक निर्जन घनघोर वन–और भविष्य ? न जाने क्या हो--घने बन समीप, गहराती विशाल गंगा--दूर दिये की टिमटिमाती लौ --महर्षि बाल्मीकि की कुटिया–जानकी......

नारायण हरि !

लक्ष्मण का लौटना

जानकी जी को वन में छोड़कर लक्ष्मण जी लौटकर आते हैं तो पाते हैं राम को टूटा हुआ-उजड़ा हुआ-हताश--दोनों भाई मौन हैं। लक्ष्मण जी सिर झुकाये खड़े हैं। राघवेन्द्र पूछने का साहस बटोर रहे हैं। दस-दस सहस्त्र असुरों को मारने वाले श्री राम स्वयं में शक्ति और साहस का नितान्त अभाव पाते हैं

लम्बी नीरवता को उनके शब्द भंग करते हैं–

"लक्ष्मन......तुम जानकी को वन में अकेला छोड़ आये–उसने कुछ कहा ?"

"सम्राट श्री राम के आदेश का सेवक ने पालन किया। जानकी ने बस इतना ही कहा कि लौटकर उनकी ही चरण सेवा करूं......उन्होंने मेरी सेवा नहीं स्वीकारी। कहा–तुरन्त लौट कर जाओ–देखना......उन्हें कोई कष्ट न हो......"

"महान जानकी---"राघवेन्द्र ने गहरी निश्वास लेकर कहा--

"परित्यक्ता--लोक निन्दा की अधिकारिणी--राजदण्ड को प्राप्त--" लक्ष्मण ने व्यंग किया।

"नहीं लक्ष्मण--मैं दो धर्मों के बीच फंस गया था। एक ओर राष्ट्र का धर्म था और दूसरी ओर पति का धर्म--राम ने राष्ट्र धर्म की मर्यादा की रक्षा की है परन्तु पति धर्म से विमुख होकर-लक्ष्मण---अश्वमेघ यज्ञ की घोषण करो--"

"यह सम्राट राम का आदेश है ?" लक्ष्मण ने कटाक्ष किया ।

"नहीं लक्ष्मण——यह एक भाग्यहीन, भाई की प्रार्थना है——लक्ष्मण——यह कांटों का मुकुट अब सहन नहीं होता । अश्वमेघ यज्ञ की घोषणा करो——राम, इन महलों में नहीं रह पावेगा——लक्ष्मण——राम का गृहस्थ जीवन समाप्त हो चुका——उस निष्पाप, तपस्विनी का सामना करने का साहस अब राम में नहीं है । सरयु के तट, अश्वमेघ यज्ञ की तैयारी करो ——राम सरयु में प्रवेश करेगा–"

"भैया——" लक्ष्मण फूट-फूटकर रो पड़े ।

"हाँ ! लक्ष्मण ! ! समाज ने राम की मर्यादा नहीं स्वीकारी । राम ने भी, स्वयं को समाज पर थोपना नहीं चाहा । यही इच्छा राम की प्राण बल्लभा, जानकी की भी थी । महान जानकी...राम ने समाज के आदेश को स्वीकारा——अपनी ही मर्यादा की बलि-वेदी पर, राम और जानकी ने स्वेच्छा से अपना बलिदान किया है । राम आज भी अपनी मर्यादा पर दृढ़ है–अटल है——समाज ने हमारी मर्यादा को अस्वीकार किया है । हम दोनों ने स्वयं को कायरता पूर्वक समाज पर थोपना भी नहीं चाहा है । हम दोनों अपनी मर्यादा के साथ समाज को छोड़ रहे हैं । समाज ने हमारी मर्यादा अस्वीकारी है–हम समाज को अस्वीकार करते हैं——जाओ——अश्वमेघ यज्ञ की घोषणा करो–यह सिंहासन और मुकुट का राम त्याग करता है——सरयु के तट राम स्वयं को मिटाकर, सरयु के उसपार सन्यासी होगा–

"भैया——" लक्ष्मण जी श्री राम के चरणों से लिपट कर बरस रहे हैं ।

॥ नारायण हरि ॥

जानकी–गंगा और बाल्मीकि

"माँ, गंगा......मुझे शरण दो......माँ......अब तुम्हीं सहारा हो———अभिशप्त, परित्यक्ता को अपनी गोद में समेट लो माँ———राघवेन्द्र के बिना मैं जी भी तो नहीं सकती–अग्निदेव ने मुझे वरदान दिया है–उनकी ज्वालायें मुझे कभी न जलावेंगी–अब तो वरदान भी

अभिशाप बन गया है । मुझे वहाँ भी शान्ति नहीं–शरण न मिल पावेगी–माँ–तुम ही दया करो–मुझे अपने अंक में समेट लो माँ–"

गंगा की उत्ताल लहरों के सम्मुख खड़ी मौन जानकी––अर्न्तमन से गंगा को मौन पीड़ा सुनाती; लहरों में खो जाने की अनुमति चाहती–––

जानकी आगे बढ़ती हैं–––आश्चर्य–––लहरें पीछे को सिमटने लगती हैं–

"जानकी तुझे यहां भी शरण नहीं है–गंगा के अंक में भी तुझे स्थान नहीं है–– अग्नि तुझे जलायेगी नहीं–गंगा तुझे अपने अंक में सुलायेगी नहीं–फिर क्या करेगी तू ? कहाँ जायेगी ? कौन है तेरा ?" –

"देवि-तुम कौन हो–पवित्र गंगा ने मुझे समाधि में प्रकट होकर दर्शन दिये हैं और तुम्हारी रक्षा का आदेश किया है–"

चौंककर, पीछे की ओर घूम गयी जानकी––एक वृद्ध, श्वेत जटा–जूट धारी तापस–– कौन हो सकते हैं ? तपस्या का दिव्य तेज, मणि सा प्रस्फुटित होता सम्पूर्ण शरीर पर ! ओह––महर्षि बाल्मीकि––माँ गंगा के आदेश पर तुझे लेने आये हैं––

"महर्षि––"जानकी का गला रूंध गया ।

"तुम कौन हो देवि––मुझे तुम, मेरे महाकाव्य की, नायिका सी लगती हो––श्री राम–कथा महाकाव्य की नायिका सी––देवि––तुम कौन हो ? क्यों आत्महत्या करना चाहती थी ?"

"महर्षि––मैं अभिशप्त नायिका ही हूँ––श्रीराम चन्द्र की परित्यक्ता– सीता–" जानकी फफक कर रो उठी––

"महासती, परम पवित्र, अग्नि–देव द्वारा पूजित जानकी का परित्याग मर्यादा पुरूषोत्तम श्री रामचन्द्र द्वारा क्यों ?"

"प्रजाजनों ने उनकी मर्यादा को नहीं स्वीकारा है–राघवेन्द्र ने स्वयं को समाज पर थोपना भी नहीं चाहा है––"

"यह तो घनघोर अन्याय है ? क्या श्री राम भी..."

"महर्षि–आप उनके लिए कुछ न कहेंगे ? मैं सह न सकूंगी–– ओह––" जानकी मुंह ढांप कर रो पड़ी ।

"क्षमा करें देवि ––आवेश में अवश्य ही अनुचित कहने जा रहा था–श्री राम तो मेरे आराध्य हैं––आप आश्रम में पधारें––आप मेरी धर्मपुत्री बनकर आश्रम में रहें––आप मातृत्व को प्राप्त हैं––ऐसी अवस्था में आत्महत्या तो जघन्य अपराध है–– श्रीरामचन्द्र की महान सन्तति से मानवता को वरद करने हेतु आपको जीना ही होगा ।"

नारायण हरि !

मुनि वशिष्ठ का निर्णय

"गुरुदेव––रक्षा करो––राघवेन्द्र ने मुकुट और सिंहासन का परित्याग कर दिया है––अवधेश अश्वमेघ यज्ञ करते सरयु में समाने को आतुर हैं––"

लक्ष्मण जी वशिष्ठ मुनि के चरणों से लिपट कर बालकों की भांति फूट-फूटकर रो पड़े––वशिष्ठ जी चौंक उठे –––

"राघवेन्द्र!! ऐसा क्यों ? क्या सीता के प्रति उनमें विरक्ति उत्पन्न––"

"गुरुदेव––जानकी जी का उन्होंने परित्याग कर दिया। उनके आदेश से मैं मां जानकी को बालमीकि ऋषि की कुटिया के समीप छोड़कर–––"

"लक्ष्मण––"

जी गुरुदेव––राघवेन्द्र की मर्यादा को समाज के कुछ लोगों ने अस्वीकारा है–– राघवेन्द्र ने स्वयं को समाज पर थोपना भी नहीं चाहा है। जानकी का परित्याग करने के उपरान्त वे स्वयं भी समाज से त्यक्त होकर–––"

लक्ष्मण जी पूरी घटना वशिष्ठ जी को सुनाते हैं।

"लक्ष्मण–––अवधेश को रोकने की सामर्थ्य अब किसी में नहीं है–––"

"गुरुदेव–भाई राम ने क्या सुख उठाया ? मां सीता को क्या मिला––पहले चौदह वर्ष का वनवास––वनवासी तापस जीवन –––लौटे तो जीवन का सुखद ठहराव केवल तीन वर्ष ––– पुनः परित्यक्त हुई निष्पाप पवित्र जानकी––राघवेन्द्र समाते सरयु में––यह तो घन घोर अन्याय है–"

"महान पुरुष, देवता और अवतार सांसारिक सुख के लिए नहीं प्रकट होते हैं लक्ष्मण-उनका जीवन संसार की पीड़ाओं को दूर करना; उन्हें सत्य की राह दिखाना: मर्यादाओं का प्रतिपादन करना और उन्हीं में लोप हो जाना मात्र ही होता है—राघवेन्द्र स्वयं नारागण का अवतार हैं—वे फलदार वृक्ष के समान हैं जिसे लोग जितनेपत्थर मारते हैं पेड़ उन्हें उतने ही अधिक फल देता है। स्वयं खाता है पत्थरों की चोट असीम, असह पीड़ा—प्रत्युत्तर में पीड़ा देने वालों को देता है अपने ही तन से प्रकट, अपने ही अंग, रसदार मीठे फल—"

"गुरुदेव—उन्हें कुछ काल के लिए ही रोके। हम सब अनाथ हो जावेगे—उनके बिना एक क्षण भी तो असह होगा— गुरुदेव— हम अभागों पर दया करें—"

"मैं प्रयत्न करूंगा! भले ही ऐसा करना अनुचित ही हो। शीघ्र ही उनसे मिलने के लिए आ रहा हूँ!"

लक्ष्मण जी के जाने के कुछ ही काल उपरान्त ब्रह्मर्षि वसिष्ठ भी चल दिये। जब राघवेन्द्र के महल के समीप पहुँचे तो वाहर अयोध्या के गणमान्य नागरिकों, विद्वानों, सभासदों को उदास सिर झुकाये बैठे देखा। वे सब राघवेन्द्र से अनुनय, विनय कर चुके हैं परन्तु राघवेन्द्र ने कुछ भी सुनने से इन्कार कर दिया है। राजमाताओं ने विनती की परन्तु वे अटल रहे! कैकेई ने बहुत प्रकार से समझाना चाहा है परन्तु राघवेन्द्र नहीं माने हैं। राघवेन्द्र के अटल निर्णय की सूचना सारे प्रदेश में बिजली की तरह फैल गयी है। जिसने सुना है वहीं तड़प उठा है! जानकी के परित्याग की बात सुनकर जनता स्तब्ध रह गई है! जिसने वन के चौदह वर्ष, भय, आतंक, विछोह, पीड़ा और कांटों पर सो कर बिताये; बेचारी तीन वर्ष भी सुख के न जी पाई। परित्यक्ता हुई!! हा दैव!! क्या अनर्थ हो गया! नारियां अचेत हैं। चेतना लौटती है तो करूण क्रन्दन में।

वशिष्ठ जी राघवेन्द्र को समझाते हैं परन्तु वे नहीं मानते हैं। राघवेन्द्र का कहना है कि वे अश्वमेघ यज्ञ के अधिकारी हैं। वे चौदह वर्ष का वनवास कर चुके हैं। उन्हें तत्क्षण यज्ञ की अनुमति मिलनी चाहिए। वशिष्ठ जी व्यवस्था देते हैं कि राजसूय यज्ञ के पूर्व का वनवास अमान्य है इसलिए तत्क्षण यज्ञ की अनुमति नहीं मिल सकती। अन्त में वशिष्ठ जी निर्णय देते हैं कि राघवेन्द्र राजसूय यज्ञ के उपरान्त ग्यारह वर्ष तक धर्मपूर्वक निमित्त होकर राज्य का संचालन करें। उसके उपरान्त वे अश्वमेघ यज्ञ के अधिकारी है। ॥ नारायण हरि ॥

राजसूय यज्ञ

राजसूय यज्ञ धूमधाम से समापन हुआ है। "राज" अर्थात् ज्योति तथा "सूय" अर्थात् उत्पन्न करना। "राजसूय" यज्ञ वानप्रस्थ से पूर्व का संकल्प यज्ञहै। इतना वर्णन महा-भारत में भी आया है। इस यज्ञ का अर्थ राजाओं को आधीन करना अथवा अपनी श्रेष्ठता की धाक जमाना (जैसा कि कालान्तर में विद्वान अर्थ लगाते रहे हैं) कदापि नहीं था।

"राजसूय" अर्थ है। राजपाठ को मात्र निमित्त रूप से धारण करता मैं ज्योति को उत्पन्न करने बाली राह जा रहा हूँ। उसमें सभी राजाओं ऋषियों आदि को निमन्त्रण भेजने की प्रथा रही है। सभी राजाओं तथा प्रजाजनों के सम्मुख श्री रामचन्द्र के तन के वस्त्राभूषण तक ब्राह्मणों को दान कर दिये हैं। जनता अश्रुपूर्ण नेत्रों से सब देख रही है। जिन्होंने वनवासी तापस जीवन चौदह वर्ष बिताया; वे पुनः ऐश्वर्य का त्यागकर वैराग्य को प्राप्त हो रहे हैं। प्रजाजन रो रहे हैं। वे उन लोगों को मन ही मन धिक्कार रहे हैं जिन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम की मर्यादा में सन्देह व्यक्त किया है। नगर की नारियाँ कह रही हैं कि वे महा अभागिन हैं। नारी मात्र के रक्षक तथा समाज में उन्हें सम्मानित एवं प्रतिष्ठित कराने वाले, राघवेन्द्र, आज जानकी का परित्याग कर, स्वयं भी समाज को विधिवत परित्यक्त करके जा रहे हैं। वे बिलख रही हैं। बारम्बार ऐसे समाज को धिक्कार रही हैं। प्रभु से प्रार्थना करती हैं कि प्रभु उन्हें भी धरती से उठा लें। इस समाज की घुटन और सड़ान्ध में वे एक क्षण भी नहीं जीना चाहती हैं।

राघवेन्द्र के शरीर पर, पीतम्बर, अचार्यों द्वारा ओढ़ाया जा रहा है। सारी प्रजा फूट-फूटकर रो पड़ी है। पीताम्बर वेशधारी श्री रामचन्द्र सभी ऋषियों को प्रणाम करते, सभी राजाओं का यथा अभिवादन करते गुरु वशिष्ठ के आश्रम में जा रहे हैं। राघवेन्द्र रनिवास, महल, ऐश्वर्य सब त्याग चले ! राज्य संचालन का भार श्री भरत जी पर लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न पर छोड़ दिया है। राजा राम वैरागी हो गये।

उन दिनों गृहस्थ से उपराम होकर प्रत्येक व्यक्ति राजसूय यज्ञ करता वानप्रस्थ धर्म को धारण करता था। राघवेन्द्र के वैराग्य से दुःखी होकर बहुत सी प्रजा भी समय–असमय

राजसूय यज्ञ करती बनवास व्रत धारण कर गई है। सम्पूर्ण राज्य में कुहराम मच गया है।

भरत जी ने राज्य चिन्ह धारण करने से इन्कार कर दिया है। लक्ष्मण और शत्रुघ्न की भांति वे भी असह पीड़ा को प्राप्त हैं। एकान्त पाते ही नेत्र बरस उठते हैं। सावन भादों की झड़ी लग जाती है।

श्री रामचन्द्र की प्रतिमा को उन्होंने मुकुट सहित सिंहासन पर बिठाया है। स्वयं उनके चरणों में ही बैठते राज्य को निमित्त होकर धारण करते तपस्या व्रती हैं।

राजसूय यज्ञ की सूचना देने जब लक्ष्मण जी मुनि बाल्मीकि की कुटिया पर गये थे तो रात्रि विश्राम वहीं किये थे। उसी रात्रि में जानकी पुत्र रत्न से वरद हुई थीं। पुत्र प्रजनन के कष्ट के साथ ही श्री रामचन्द्र के वैराग्य हेतु राजसूय यज्ञ की सूचना से उन्हें कितनी पीड़ा हुई थी! उसकी कल्पना कौन कर सकता है। बार-बार अन्तः मन कराह उठता था। जानकी तेरे पुत्र का कैसा भाग्य है कि पिता का स्पर्श सुख भी न पा सकेगा कभी! आह! राघवेन्द्र! तुम अपने ही पुत्र को कभी प्यार न कर पाओगे! कभी गोद में लेकर न घूम पाओगे! समाज की बलिवेदी पर मर्यादा के सहित तुम्हारे अबोध शिशु भी तो बलिदान हो गये, भोले अबोध निरपराध--फिर भी अपराधी से दण्डित! रे समाज! तेरा यही न्याय है।

मुनि वशिष्ठ के आश्रम में वैरागी श्री राम। योग वशिष्ठ सुनते ब्रह्मर्षि वशिष्ठ से! बाल्मीकि के आश्रम में परित्यक्ता जानकी! पितु सुख से वंचित सन्तान को सोने से समेटे! उदास! हा! राम!!

हरि ॐ नारायण हरि

अश्वमेघ यज्ञ का स्वरूप

त्रेता युगीन ऐतिहासिक घटनाक्रम में संस्कृति की झलक के साथ, विशुद्ध आध्यात्मिक कथा निरन्तर आगे बढ़ती एतिहासिक क्रम के साथ ही समापन की ओर अग्रसर है।

मन ही दशरथ (दश+रथ) मन ही दशानन (दशों इन्द्रियाँ जब दस मुँह बनें) आत्मा श्री राम हैं, जो घट-घट वासी हैं। जैसे शबरी के झूठे बेर खाये थे; वैसे ही आत्मा

होकर प्रत्येक जीव की झूठन को रक्त-मांस, शक्ति, तेज में लौटाते, प्रभु श्रीराम प्रत्येक शबरी के झूठे बेर खाते......अब शबरी भूली राम को......

जब मन दशरथ न बना ! वृत्तियाँ दशानन हुई ! बुद्धि (प्रकृति)) स्वयं मृग की वासनात्मक लिप्साओं में फँस बैठी। आत्मा श्री राम चल दिये ढूंढ़ने स्वर्णमृग ! आत्मा से छूटी देह, निर्जीव होकर आंगन में पड़ी थी। पांव हुये दक्षिण ! चल दी लंका (शमशान घाट) दशानन रावण के देश ! मन दशानन, बनाकर अर्थी, बांध रस्सियों से, रथों (कन्धों) पर आरुढ़, उड़ाये लिए जा रहा दक्षिण ! लंका ! सागर के उस पार ! घट फूट गये ! मारे गये जटायु ! लंका (शमशान घाट) पहुंची है अर्थी ! घेरकर बैठ गई हैं राक्षसियाँ, प्रतनी और त्रिजटा (त्रिगुणात्मक वासनायें) ! ठहाके लगाता मन दशानन ! आत्मा से छुड़ा लाया प्रकृति को ! धरती की बेटी (देह) को ! भयभीत कांपती सीता ! आत्मा रूपी श्री राम को पुकारती ! तड़पती ! सरयु (संस्कृति में सरयु का अर्थ वायु मण्डल तथा प्राण वायु भी है। देखें संस्कृत कौस्तुभ) के तट छूट गये ! पार कर बैठी लक्ष्मण रेखा ! लक्ष्मण रेखा ! मर्यादा रेखा ? तभी तो ले उड़ा रावण ! लक्ष्मण रेखा ! अदृश्य शाश्वत रेखा ! इस पार राज्य आत्मा श्री राम का है। वे जीवन हैं ! उस पार राज्य रावण का है जो ठन्डी अन्धेरी मौत है ! मर्यादा लक्ष्मण रेखा की है ! पार हुई रेखा ! छूट गये सब मित्र स्वजन सारे ! आये हैं अर्थी (शव) के संग ! फिर भी कितने दूर ! उनकी सान्त-वना आज अर्थी तक नहीं पहुँच सकती ! इसका भय, आतंक उन तक नहीं पहुँच सकता ! मर्यादा रेखा की है।

चिता की लकड़ियों पर आत्मा (श्रीराम) की विरह में, जली, भस्मी हुई धरती की बेटी यह देह हमारी ! भस्मी ने पानी का संग किया ! जंगलों की अशोक वाटिकाओं में भटक चली ! पुकारती हा राम ! हा राम !!

प्रत्येक पेड़ पौधों में व्याप्त आत्मा रूपी श्री राम प्रकट हो गये ! पराजित हुई मृत्यु (रावण) ! भस्मी ने पानी का संग किया ! खाद बनी ! पेड़ों की जड़ों ने ग्रहण किया ! आत्म ज्वालाओं में यज्ञ हो पुनः अग्नि-परीक्षा द्वारा फल बनी ! एक सीता ! अनेक अग्नि-परीक्षा !

"इन्द्रायाहि चित्र भानो सुता हमे त्वायवा !
अणविभिस्तनाः पूतासा !" (ऋग्वेद) १/३/४

सूर्य की पुत्री धरा ने, जब तेरा आवाहन किया, हे महान यज्ञ की ज्वाला ! पेड़ों के गर्भ में जब प्रज्जवलित हुई तू ! मेरे तन का कण-कण, तेरी रश्मियों में पवित्र होने लगा । तेरी कृपा से भटकती देह (मृत्यु रूपी रावण से अभिशप्त) के भस्मी कण पुनः अन्न में लौट चले !

"इन्द्रायाहि तुतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्वा नशचना ।।" (ऋग्वेद १/३/६)

उसी अन्न को जब एक दम्पत्ति ने ग्रहण किया तो पुनः तुझमें ही यज्ञ हो, शिशु का रूप धारण करता अन्न, बन (शिशु गर्भ रूपी) क्षीर सागर से बाहर चल दिया । अग्नि-परीक्षा ! अग्नि-परीक्षा!!

जीवन– – – – – – –जड़ता– – – – – –विनाश
आत्मा– – – – – – प्रकृति – –– – –माया

जड़ प्रकृति जब आत्मा का स्पर्श पाती हैं तो जीवन्त बालक का स्वरूप ग्रहण करती है । आत्मा के विपरीत वासनात्मक जगत में भटकने लगती है तो पुनः आत्मा से त्यक्त हो भस्मी का अम्बार बनती है ! आवागमन !

सीता (प्रकृति) धरती में समाती हैं तथा आत्मा सरयू (अनन्त वायुमण्डल) में विलीन हो जाते हैं ! पुनः प्रकृति लव और कुश (लौ अन्न की बालियां और कुशा में) पुत्र-वतो अर्थात् प्रकट होती हैं ! निरन्तर कथा ! अहर्निश कथा ! सर्वत्र !

वैष्णव और स्मार्त मनाते नवरात्र ! प्रत्येक दिन सामिग्री के साथ जलाते विषयी मन दशानन की प्रत्येक इन्द्रिय की वासना के अभिशाप ! दसवें दिन मनाते दशहरा ! हमने मन दशानन को "हरा" (जीतना) ! जलाओ पुतला विषयान्ध मन ! बनो दशरथ भजो राम ! राम !! राम !!

फिर आती है अमावस की काली अन्धेरी रात......कालिमा ढूँढती अपने कलुषित बेटे दशानन रावण को ! भक्त मनाते दीपावली ! हर ओर दीप जलाओ.....आत्म-ज्योतियों की विजय हुई है......श्रीराम जीते हैं...जीवन ने मृत्यु पर विजय पाई है । भीतर-बाहर, हर ओर, जगमग दीप जलाओ... उदास है कालिमा......मुस्कराते दीपक......खिलखिलाती फुलझड़ियाँ और अनार-अट्ठहास करते पटाखे...गगन में उठते अग्नि बाण...... गाते जय-जय राम श्री राजा राम!!!

आओ मित्र-दशहरे के रावण के सामने खड़े हो--पूछो स्वयं से कहीं अपना ही पुतला तो नहीं जला रहे हो ? दस इन्द्रियों को यदि दस मुंह बना बैठे हो तो यह रावण का पुतला तुम्हारा भी तो प्रतीक है। हनुमान जलायेंगे तुम्हारे जीवन रूपी लंका को-तुम जलोगे-नित्य-ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, लोभ, अभाव, दुःख, चिन्ता की अग्नियों में—फिर एक दिन, चिता की लकड़ियों पर, दशहरे के रावण से धू-धू कर.........

यदि दस इन्द्रियों को रथ (लगाम लगाना, निग्रह करना) दशरथ बने हो तो देह हुई है "अवध—दशरथ अवध के राजा हैं—-'अवध' अर्थात् जिसका कोई 'वध' न कर सके।

"जहां राम तहां अवध निवासू।"

जहां आतमा रूपी श्री राम हैं वहीं अवध अर्थात् मृत्यु नहीं है--जहां आतमा रूपी श्री राम हटे तहां अयोध्या भी समाप्त- आतमा के हटते ही मृत्यु रूपी रावण के पंजे में, यह देह रूपी धरती की बेटी है। एक ठन्डी अन्धेरी रात है ! मौत !!

अश्वमेध यज्ञ की तैयारी

अश्वमेध यज्ञ की तैयारियाँ शुरू हो गयी हैं। अश्वमेध यज्ञ (अ=रहितः श्व=अतीत, कल, मृतः ! मेध=प्रवेश करना, व्याप्त होना) का अर्थ है अतीत अर्थात् मृत्यु से रहित अर्थात् नित्य सत्य रूपी आतमा में प्रवेश करना। व्याप्त होना, आतमाद्वैत करना। वान-प्रस्थ, फिर एक वर्ष का अज्ञातवास तब अश्वमेध यज्ञ करता सरयु में वास। आदि काल से चली आ रही परम्परायें-भारतवासियों की संस्कृति-जिसने जीवन को यज्ञ माना-जीवन्त पाठशाला की संज्ञा दी। गुरुकुल का भोला ब्रह्मचर्य, युवावस्था का मादक गृहस्थ, समर्पित सेवाओं का वानप्रस्थ, स्वयं को तौलने का, अपना सत्य स्वयं खोजने का अज्ञात-वास; फिर अश्वमेध यज्ञ, लहरों में वास ! अतीत जीवन की इति श्री-लहरों के उस पार प्रकट होता एक अग्निवेश-सन्यासी।

जब भी राजा (कोई भी, गृहस्थ) राजसूय यज्ञ करता था। उसके उपरान्त राज-पाट आदि से विरक्त होकर वैराग्य का पीताम्बर धारी होता था। युवराज निमित्त होकर मन्त्रियों सहित राज्य संचालन करते थे। राजा स्वयं को अन्तिम सत्य में व्याप्त करने के लिए धर्म गुरू, सन्त, सन्यासी, ऋषि सद्ग्रन्थों की सरस्वती को समर्पित हो जाता था।

युवराज के अभाव में श्री रामचन्द्र जी अपने अनुज, भरत जी को युवराज घोषित करना चाहते थे। परन्तु भरत जी नहीं माने श्री रामचन्द्र जी की प्रतिमा सिंहासन पर

विराज कर, निमित्त भाव राज्य भार सम्भालते हैं।

बारह वर्षों के वानप्रस्थ का विधान क्यों ? इसलिए जिस भी कर्म का आप आचरण से त्याग करते हैं उसे मन, विचार और संस्कारों से लुप्त (त्यक्त) होने में इतना समय लग जाता है। जब तक विषय; चिन्तन, विचार और संस्कार से नहीं मिटा, आप उससे त्यक्त कहां हुये ?

दूसरा कारण है, मन के साथ शरीर को बदलने में इतना समय लग ही जाता है। अब आप नियम-संयम तपस्या का जीवन धारण करते हैं। शरीर स्वतः निरोग होता, निरोग मन का साथ देता पुनः नवीन हो उठता है। स्वस्थ शरीर और मन, ईश्वर प्राप्ति को समर्थ है।

तीसरा कारण है कि बिना समर्पित सेवा के तन का ऋण ही नहीं उतर पाया। वानप्रस्थ धर्म प्राणी मात्र को समर्पित निष्काम, निमित्त सेवा है।

एक वर्ष का अज्ञातवास स्वयं को जानने का है। परखने का है। क्योंकि इसके उपरान्त सारा खेल अग्नियों का है। ईश्वर को जानना ज्ञान का विषय है। ईश्वर के लिए ही, अन्तिम रूप से समर्पित हो जाना; एक ही ब्रह्म में स्थित होना तपस्वी की उपलब्धि है।

प्रत्येक ओर सूचना एवं निमन्त्रण जा रहे हैं। सन्त, ऋषि मुनि, सन्यासी, तापस, राजा सबको सूचना जा रही है। तपस्वियों को कृपा पूर्वक आदेश एवं आर्शीवाद के लिए निमन्त्रित करने की प्रथा सर्वमान्य प्रथा रही है।

सभी राजाओं को भी सूचना भेजने का जो भाव था। महाराज ! मैं चक्रवर्ती साम्राज्य (सन्यास) को प्राप्त होने जा रहा हूँ। अश्वमेध यज्ञ की तैयारियां आरम्भ हो चुकी हैं। आप कृपा पूर्वक साधुवाद हेतु पधारें। सम्भव है अतीत में राजा होकर हम आपस में युद्ध लड़े हों। सम्भव है आपके मन में मेरे प्रति कोई इच्छा, भाव, प्रतिशोध का संकल्प रहा हो। यदि ऐसा है तो आप पधारें। यज्ञ के उपरान्त आप मुझसे बदला न ले पावेंगे- मुझे मारकर भी न मार पावेंगे ! स्वयं मर जावेंगे-क्यों ? इसलिए; यज्ञ के उपरान्त मैं सन्यासी हूं-चक्रवर्ती सम्राट हूँ-सब में एक ब्रह्म देखूंगा-हत्यारे में भी ब्रह्म ही देखूंगा-उस अवस्था में आप प्रतिशोध न लें पावेंगे।"

अश्वमेध यज्ञ के घोड़े की परिक्रमा का पथ नियत कर दिया जाता था। सभी राजा अपनी सेना सहित आकर परिक्रमा पथ के समीप शिविर लगाते थे। जैसे कि आपने

प्रयाग में कुम्भ के मेले में देखा है। सन्यासी, तापस, नगर में राहमहल के समीप ही ठहराये जाते थे। अन्य राज्यों के राजा नगर से दूर ही शिविर लगाते थे।

पर्णकुटी से दण्डधारी महाराज, पीत वस्त्र का परित्याग कर पुनः राजसी बस्त्र धारण करता अपने रंग महल (जहाँ रानियाँ रहती हैं) में प्रवेश पाता था रानियों को परम् ब्रह्म का उपदेश करता, उनसे सन्यास हेतु अनुमति की प्रार्थना करता पुनः बाहर निकलता था और अतीत के प्रतीक दण्ड को अश्व पर स्थापित कर देता था। रानियाँ अश्व के सामने बिछ जाती थीं। वे जानती थी अश्व के जाने का अर्थ ? कल उनका वैधव्य होगा।

अश्व को लेकर महाराज रंगमहल के द्वार पर आते थे तो युवराज तथा अन्य राजकुमार उसको रोकने का प्रयास करते थे। क्योंकि वे जानते थे अश्व के आगे बढ़ने का अर्थ है; कल वे पितु विहीन होंगें ! महाराज उन्हें उपदेश करते अश्व सहित सभा भवन में प्रवेश पाते थे। मन्त्री सदस्य रुकने की प्रार्थना करते थे परन्तु अश्व लिए महाराज सिंह द्वार की ओर बढ़ते चले जाते थे। द्वार पर सन्यासी, ऋषि-मुनि, तापस उनका रास्ता रोककर खड़े हो जाते थे। वे कहते थे, महाराज पहले हमारे प्रश्नों का उत्तर दो! हम जानना चाहते हैं तुम इस यज्ञ के अधिकारी हो ? वे नाना, वेद, वेदांग, आत्मा, सृष्टि आदि के प्रश्न पूछते थे। महाराज उनका समुचित उत्तर देते थे। तब सन्यासी पुष्प बर्षा करते, साधूवाद देते मार्ग से हट जाते। अश्व द्वार को पार कर जाता।

सेनापति अश्व की डोर थाम लेता और महाराज पुनः पर्णकुटी को लौट जाते। अश्वमेध यज्ञ का अश्व दण्ड, छत्र, धारण किये, नगर की ओर बढ़ने लगता। नगरवासी, प्रजाजन पुष्पवर्षा करते जाते। सेनापति अपने अश्व पर बैठे उसके साथ-साथ उसकी लगाम थामे चलते थे। अश्व बढ़ता जाता नगर की सीमा से बाहर हो जाता। सेनापति के साथ सेना की टुकड़ी तथा घनिष्ठ मित्र, राजा, अपनी थोड़ी सेना के साथ अश्व के साथ अपने घोड़े दौड़ाने लगते। अश्वारोहियों का दल निरन्तर संख्या में बढ़ता जाता। जिस राजा के शिविर के पास से दल गुजरता वह राजा भी अपनी थोड़ी अश्वारोही सेना सहित उनके साथ हो जाते।

तभी एक शिविर के पास से जैसे ही अश्व निकलता; उस शिविर के राजा उसे थाम लेते ? सब रुक जाते ! ऐसा क्यों हुआ ? देखा ! अरे ? इस राजा ने तो मृत्यु-तिलक ले रखा है। सब उसको समझाते कि अब इस भावना को त्याग ! अब तक कहाँ सो रहा

था ? अब तो वह मात्र सन्यासी है। यदि राजा मान जाते हैं तो मृत्यु तिलक पोंछ दिया जाता अन्यथा राजा को बाकी राजा ललकार कर मार देते। अश्व आगे बढ़ जाता। ऐसा सदा नहीं होता था। क्योंकि द्वेषी राजा यज्ञ में सम्मिलित होने आते ही नहीं थे। अश्व घोषित परिधि में ही दौड़ाया जाता था। यह यात्रा सूर्यास्त के उपरान्त तक राजमहल-के पिछवाड़े तक अवश्य पहुंच जाती थी।

सेनापति अकेले गुप्त द्वार से महल मे प्रवेश पाते। रानियों के सभा भवन में (मृत देह) दण्ड को दोनों बाहों पर लिटाये रानियों के सम्मुख घुटने के बल बैठकर प्रार्थना करते:—

"यह महाराज (अमुक) का मृत शव है। आप रज शैय्या (बालू) पर इनके साथ शयन करें तथा प्रातः शव दाह हेतु शव सहित यज्ञ शाला में पधारें!"

रानियाँ दण्ड रूपी मृत देह को ग्रहण करती और सेनापति उल्टे पांव लौट जाते। प्रातः रानियां राजकुमारों सहित शव (दण्ड) को लिए यज्ञशाला में पधारतीं। युवराज दाह संस्कार की पूर्ण विधि सम्पन्न कराते थे। श्वेत वस्त्र (समर्पण) में लिपटे महाराज को, आचार्य आदेश करते कि वे अनुभूत करें कि वे स्वयं चिता पर जल रहे हैं। उनका सम्पूर्ण अतीत, उपलब्धियाँ, स्मृतियाँ जलकर शेष हो रही हैं।

जैसे कोई व्यक्ति मर जाता है उसकी चिता जलती है। उपरान्त उसकी भस्मी नदी जल में प्रवाहित होती है। उसी प्रकार अतीत के महाराज (जिन्होंने अपना सम्पूर्ण अतीत चिता में जला दिया है) श्वेत वस्त्र में लिपटे (बन भस्मी स्वयं) सरयु (जो भी नदी) में प्रवेश पाते हैं। आचार्य उनके श्वेत वस्त्र को पकड़ लेते हैं। शिखा एवं सूत्र विहीन महाराज (वस्त्र से अलग होते) निर्वस्त्र जल की धाराओं में समा जाते हैं। आचार्य श्वेत वस्त्र को, जो शेष रहता है रानियों को प्रदान करते हैं जिसे वे वैधव्य के रूप में ग्रहण करती हैं। उसी श्वेत वस्त्र को धारण करती वे धरती में समाती हैं। किले में ही खोदी गयी गुफा में तपस्या हेतु प्रवेश कर जाती हैं।

॥ नारायण हरि ॥

लव--कुश

वीरान रंग महल में श्री रामचन्द्र ने प्रवेश किया है ! कौन रोकेगा उन्हें ? जानकी! वह तो परित्यक्ता है ! कुछ देर मौन खड़े रहने के उपरान्त राघवेन्द्र चल दिये हैं । मानों मौन, मन ही मन जानकी से अनुमति मांगी हो । द्वार पर युवराज भी तो नहीं हैं ! बिलखते भाई हैं ! रोकने का भी; किसमें साहस शेष है ? सब निष्प्राण से स्तब्ध मूक अश्रु बहाये जाते हैं ! हा ! ! अयोध्या से राजा राम जाते हैं ।

मौन, निर्विकार, नीलाभ मणियों के प्रकाश से युक्त, श्री रामचन्द्र सभागृह को पार करते अश्व सहित द्वार पर आते हैं । ऋषि, मुनि, तापस सभी को प्रणाम करते, सभी को विनम्र सहज सन्तुष्ट करते वे आगे बढ़ते हैं । लक्ष्मण जी अश्व की डोरी थाम लेते हैं । रामचन्द्र यज्ञ शाला की ओर बढ़ जाते हैं ।

अयोध्या दुलहिन सी सजी है । परन्तु इस साज-सज्जा में असह पीड़ा भी छिपी नहीं है । सुन्दर वस्त्राभूषण से सजी प्रजा, बिलखती, तड़पती अश्व का स्वागत करती है । हाथ अश्व पर पुष्प वर्षा करते हैं । नेत्र सावन भादों से मूसलाधार बरसते हैं ! अचेत होकर सड़कों पर बिछती प्रजा ! अश्व नगर के बाहर हो गया है । सेना की छोटी सी टुकड़ी साथ में है । सभी राजा के साथ अश्व दौड़ाने लगे हैं ! तभी !

दो किशोर बालकों ने आगे बढ़कर अश्व को रोक लिया है ! उनके माथे पर मृत्यु-तिलक है । लक्ष्मण जी स्तब्ध उन सुन्दर बालकों को देख रहे हैं ! भोले सुन्दर, ज्योतिमय, मोहक मुखड़े ! विशाल निर्मल नेत्र; गठा हुआ शरीर ! भाल पर मृत्यु-तिलक ? सारे राजा और सैनिक अश्वारोही स्तब्ध हैं । भला बालकों का श्री राम के प्रति प्रतिशोध कैसा ?

"पूज्य चरण ! हम दोनों भाई आपको प्रणाम करते हैं । हमारे नाम 'लव' और 'कुश' हैं । हमारी माता जनक सुता जी हैं । अश्वमेध यज्ञ के अश्व को हम नहीं छोड़ेगे। पहले आप हमें न्याय दें । हमारे पिता राघवेन्द्र अश्वमेध यज्ञ के अधिकारी कैसे हो गये ? उन्हें सन्यास का अधिकार दिया किसने? उन्होंने हमारे प्रति किस धर्म को धारण किया ? हमारी माता जानकी के प्रति क्या उन्होंने उचित धर्म का निर्वाह किया ? आप हमें न्याय दिये बिना अश्व न ले जा पावेंगे । आप चाहें तो हम निरीह बालकों का वध करके इस अश्व को ले जावें । अन्यथा भी तो इस अश्व के जाने का तात्पर्य हमारा पिता सुख से वंचित

होना है ! हमारा वध ही तो है !"

लक्ष्मण जी के नेत्रों में अविरल अश्रुधारा प्रवाहित है। शरीर शिथिल होने लगा है। असह पीड़ा के आवेग को रोक सकने में असमर्थ लक्ष्मण जी मूर्छित होकर गिर पड़े हैं। शीघ्रता से राजा अश्वों से उतर उन्हें उठाने का प्रयास करते हैं। लक्ष्मण जी गहन मूर्छा को प्राप्त हो चुके हैं। सभी अश्वारोहियों के चेहरे इस हृदय विदारक दृश्य से भीग चुके हैं। गहन मूर्छा ने लक्ष्मण जी के मुख को निस्तेज सा बना दिया है।

शीघ्र सूचना भरत जी को पहुँचाई गयी है। शीघ्र ही भरत एवं शत्रुघ्न जी वहाँ पहुँचे हैं। बालकों को देखकर वे भी रो पड़े हैं। धीरे-धीरे लक्ष्मण जी सुधि को प्राप्त हो रहे हैं। 'लव' 'कुश' लक्ष्मण जी की मूर्छा से अत्यन्त दुखी हैं सीपी की सी भोली प्यारी आँखों से आँसुओं की लड़ियाँ तो बरस रही हैं परन्तु अश्व छोड़ने को कतई तैयार नहीं है। सूचना श्री राम तक पहुँचाई गई है। दोनों बालकों के सम्मुख सभी पराजित हैं। उन्हें न्याय मिलना चाहिए ! इसे कौन नहीं चाहता ! काश ! यह बालक ही रोक पाते श्रीराम को ! काश !! अवध को पुनः राजा राम मिलते।

जब महर्षि बाल्मीकि को अश्वमेध यज्ञ की सूचना मिली तो जानकी जी को बिना बताये वे 'लव' और 'कुश' को लेकर परिक्रमा पथ पर आ गये। उन्होंने ही दोनों बच्चों को सारा रहस्य बताकर अश्व पकड़ने को कहा था। जानकी जी को इसीलिए नहीं बताया था कि वे ऐसा कदापि न होने देतीं। बाद में जब उनको पता चला कि महर्षि दोनों बच्चों को लेकर परिक्रमा पथ पर गये हैं तो वे अधीर हो उठीं और उनको ढूंढ़ती पीछे चल दीं।

जैसे ही राघवेन्द्र वहां पहुँचे। उनकी दृष्टि दोनों बच्चों पर पड़ी। क्या श्री राम जान गये कि वे अपने ही......। निर्विकार भाव उनका अविचलित रहा। गम्भीर वाणी में उन्होंने दोनों बालकों से अश्व को छोड़ देने को कहा। उन्हें सम्मुख पाकर दोनों बालक स्तब्ध हो गये ! न कुछ कह पाये ! बस एक टक उन्हें देखते ही रह गये। उनके हाथ शिथिल होने लगे। पेड़ की ओट से महर्षि बाल्मीकि सब देख रहे थे। उन्हें लगा बालक अश्व को छोड़ देंगे। वे शीघ्रता से बाहर आये।

"श्री रामचन्द्र ! ये दोनों बालक तुमसे न्याय की भीख चाहते हैं।"

"प्रणाम करता हूँ गुरुदेव ! आप बतायें इन बालकों के साथ क्या अन्याय हुआ है ?"

"इन्हें पितृ सुख से क्यों वंचित किया गया ? इनका अपराध ?"

"इसका उत्तर वे लोग ही दे सकते हैं गुरुदेव ! जिन्होंने इन्हें पितृ सुख से वंचित किया है।"

"पितृ सुख से वंचित करने वाले स्वयं रामचन्द्र हैं ! इन्हें न्याय दो !"

"इन्हें पितृ सुख से वंचित करने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम नहीं हैं। उन्होंने कभी किसी के साथ अन्याय नहीं किया।"

सब ने चौंककर देखा ! सामने जानकी खड़ी थीं।

"महामुनि ! आपको उचित नहीं था कि आप अश्व को बालकों से पकड़वाते !" जानकी जी कहती गईं, "ऐसे समय में जब वे राजसूय यज्ञ के उपरान्त वानप्रस्थ तथा अज्ञातवास को धर्म पूर्वक धारण कर अश्वमेध यज्ञ को पूर्ण करने जा रहे थे। जिन पुलों को राघवेन्द्र पार करने के उपरान्त जला चुके हैं क्या वे अब लौट सकते हैं ? आप स्वयं सन्यासी हैं ! पुनः जिस न्याय की बात आप राघवेन्द्र से कहते हैं उसका उत्तर तो समाज को देना है। असुर द्वारा अपहृत और समाज द्वारा अपमानित, अपवित्र, त्यक्ता के पुत्रों को न्याय कैसा ? महान् रघुनन्दन ने समाज के आदेश का पालन किया है। न्याय की चर्चा का औचित्य क्या ?"

सब मौन स्तब्ध खड़े हैं। नेत्रों से पीड़ा बह रही है। एक राम हैं जो निर्विकार हैं। जानकी जी आवेश में कहती जा रही हैं, "लव ! कुश ! अश्व को श्रद्धा पूर्वक छोड़ दो। भारत कुल श्रेष्ठ; रघुनन्दन, मर्यादा पुरुषोत्तम, करूणा के सागर महा तपस्वी के चरणों में भक्ति पूर्वक प्रणाम करो ! जिन्होंने अपने सभी सुखों का मर्यादा हेतु बलिदान दिया है, उनकी चरण धूल माथ धरो ! हे रघुनन्दन ! यह बालक आपके चरणों में नतमस्तक हैं। आप इनके अपराध को क्षमा करें। यह दासी आपके चरणों में है। इसका प्र.ाम स्वीकार करें।" जानकी जी धरती से लेटकर प्रणाम करती हैं।

"जानकी ! ! !" राघवेन्द्र बस इतना ही तो कह पाये !

"स्वामी ! मेरे कारण आपको कितने असह कष्ट हुये। परन्तु आपने सदा दोष स्वयं को दिया ! स्वर्ण मृग मैंने मांगा ! लक्ष्मण को अपशब्द कहकर मैंने आपके पीछे भेजा। परन्तु आपने और निष्पाप लक्ष्मण ने सदा स्वयं को ही दोषी कहा ! एक बार भी तो मुझे दोष न दिया। उत्तर में मैं अभागिन आपको क्या दे पाई ? लोकनिन्दा ! अपयश ! जिसे

राघवेन्द्र की फूलों की शैय्या होना था वह सदा कांटों की सेज बनी। कांटों पर सोकर भी आपने कभी दोष न दिया! स्वामी!! आप कितने महान हैं!" जानकी जी के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित है।

"जानकी!!

"स्वामी! महान कुल की मर्यादा के अनुरूप यज्ञ को अग्रसर हों! प्रभु! आशीर्वाद दें, विचार बस आप में; एकी भाव से स्थित हो। हर क्षण आप में ध्यानस्थ रहूँ! शरीर धरती में समाया तपस्यालीन हो! मन से आपके चरण निरन्तर धोती रहूँ।"

॥ नारायण हरि ॥

सरयु-प्रवेश

"ॐ! लोमभ्यः स्वाहा! ॐ स्वचे स्वाहा! ॐ लोहिताय स्वाहा ...... मेदोभ्यः स्वाहा......मासेभ्यः स्वाहा......स्नायुभ्यः स्वाहा......अस्थिभ्यः स्वाहा......"

हे राम! तुम जल रहे हो! रोम जल रहे हैं! त्वचा जल रही है! मेदा, रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा सब कुछ जल रहा है! सर्वांग अग्नियों में शेष हो रहे हो तुम! हेराम! अपनी सम्पूर्ण उपलब्धियों सहित शेष हो रहे हो तुम! सम्पूर्ण अतीत जलकर भस्म हो रहा है। मित्र, स्वजन, अपना पराया सब विचार शेष हो रहा है! यह तुम्हारा अन्तकाल है!

सारी प्रजा तड़प रही है। बिलख रही है। सभी उस महा-मानव के दर्शन को व्याकुल है। आह! फिर कहाँ देख पावेंगे उसको! प्रत्येक हृदय व्याकुल तड़प रहा है! कराह रहा है। मौन पुकारता, "हे मर्यादा पुरुषोत्तम! हम तुम्हारी मर्यादा को स्वीकारते हैं! तुम नही जाओ! नहीं जाओ! हे राम! तुम्ही से अवध है-बिन तुम्हारे हमारा जीवन निस्सार है-व्यर्थ है-आह! अब क्या हो सकता है! समय तो निकल गया है-अब कुछ नहीं हो सकता-काश! हम अपने प्यारे श्री राम को रोक पाते।

वे विद्वान शास्त्री, जिन्होंने श्री राम की मर्यादा में सन्देह किया था; अपराधी से सिर झुकाये खड़े हैं। बालमीकि के संग लव-कुश को लेकर खड़ी तापस जानकी पर दृष्टि पड़ती हैं तो वे फूट-फूट कर रो उठते हैं। कल की साम्राज्ञी। श्री रामचन्द्र की प्राण-बल्लभा! आज मात्र एक तपस्विनी, परित्यक्ता साधारण जन समूह में श्री राम के अन्तिम दर्शन को आतुर-कौन सहन कर पावेगा इस करुण दृश्य को-भोले सुन्दर सुकुमार

बालक जो युवराज से सजे होने चाहिए थे। साधारण सूक्ष्म मात्र वस्त्र से तन ढके समाज से त्यक्त, अपमानित–समाज द्वारा घोषित अपराधी–रे समाज–बता, उनका अपराध क्या? श्री राम बल्लभा मात्र एक भिखारिन सी– उसके तेजस्वी पुत्र.....ओह !

साधारण प्रजा की भीड़ में खड़ी आतुर, व्याकुल, प्रभु के दर्शन की प्यासी जानकी ! उदास, मोहक, सन्तप्त, भोले लव और कुश ! कितने खामोश !! आचार्यों की वाणी बाहर कानों में पड़ रही है।

"ॐ ! लोमभ्य: स्वाहा !"

जनता का करूण क्रन्दन ! नारियाँ अचेत हैं। महामानव अन्तिम यात्रा को चल दिया है। जानकी सर्वांग सिहर उठी हैं। भोली उदास डबडबाई आँखों से बालक अपनी माता को देखते ! कितनी मर्मान्तक पीड़ा है ! अन्तिम यात्रा पर पिता जा रहे हैं जिनका स्पर्श भी अभागे पुत्र न पा सके हैं। उपेक्षित, त्यक्त चिता की अग्नि देने के अधिकार से विहीन ! मात्र मूक दर्शक ! साधारण भीड़ में खड़े हुये !

श्वेत वस्त्र में लिपटे नीलाभ–मणियों की सी सुन्दर कान्ति के स्वामी श्री रामचन्द्र बाहर आये हैं। कुहराम मच गया है। पुष्पों से, सरयु में तिरोहित होने चल दिये हैं। आसुंओं से भीगी, बरसती, असंख्यों आंखें, उनके अन्तिम दर्शन को उन पर स्थिर हो गई हैं। जा रहे हो महामानव ! अन्तिम यात्रा पर ! वीर पुरुष ! तुमने स्वयं को समाज पर नहीं थोपा परन्तु असत्य, अन्याय के सम्मुख झुके भी नहीं ! समाज ने तुम्हारी मर्यादा नहीं स्वीकारी ! तुमने समाज के निर्णय को शिरोधार्य किया और अपनी महान मर्यादाओं के साथ समाज को त्याग चले ! हे राम ! फिर कभी होगा कोई ऐसा राम !

नेत्र स्थिर हैं ! देखकर भी मात्र एक ब्रह्म को देखते हुए ! एको ब्रह्म......आचार्यों से घिरे वे निरन्तर सरयु के तट की ओर बढ़ते जा रहे हैं। भरत,लक्ष्मण, शत्रुघ्न ! बच्चों की तरह फूट-फूट कर रो रहे हैं। कितने अचेत होकर गिर पड़े हैं। भीड़ में से जानकी ने, पुत्रों सहित दण्डवत प्रणाम किया है। नारी मात्र की पीड़ाओं को जानने वाला फिर कभी ऐसा होगा कोई ?

श्वेत वस्त्र से लिपटी देह जल की धाराओं में प्रवेश कर गई है। आचार्यों ने, निरन्तर वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुये, श्वेत वस्त्र को थाम लिया है। वस्त्र खुलने लगा है। निर्वस्त्र देह जल की धाराओं में समा गई है। श्री राम सरयु समाते हैं। भक्त मात्र के

प्राण ! श्री राम जल की धाराओं में विलीन हो जाते हैं।

आचार्य वस्त्र लेकर लौट रहे हैं। वे श्री भरत जी के सम्मुख वस्त्र लेकर खड़े हैं। मानों पूछ रहे हों इस वस्त्र को लेगा कौन ? क्या जानकी, परित्यक्ता ? पीड़ायें जन हृदयों को विदीर्ण कर गई हैं। करुण विलाप के अतिरिक्त कुछ सुनाई नहीं देता है।

"भैया ! मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम हमसे विदा हो गये ! अब आप निर्णय दें ?" लक्ष्मण जी कहते हैं ! श्री भरत चौकते हैं ! आचार्यो के हाथ में पकड़े वस्त्र को देखते हैं। भीड़ में खड़ी जानकी की ओर लपकते हैं।

"माँ ! आप आगे बढ़ें ! वस्त्र ग्रहण करें !"

श्री भरत उनसे कहते हैं उनके नेत्रों से अविरल जल की धारायें प्रवाहित हैं।

"मैं---क्या कहा ? क्या एक परित्यक्ता........"

जानकी जी मूर्छित होकर गिर पड़ी हैं। विलाप और चीखों से वातावरण द्रवित हो रहा है। भरत जी शीघ्र उन पर झुकते हैं। लक्ष्मण जी एवं शत्रुध्न उनके साथ हैं। जल के छीटे दे रहे हैं। लक्ष्मण जी जानकी जी के पांव मल रहे हैं। धीरे-धीरे मां जानकी को सुधि होती है।

माँ ! अब तो आप ऐसा न ही कहें! श्री राम द्वारा हम सब ही तो परित्यक्त हो गये —अब आप हम अभागों के सिर पर हाथ रखें! हमारे पापों को क्षमा करें। आपसे भी परित्यक्त होकर हम एक क्षण भी न जी पायेंगे ! हा ! राम हमें त्याग गये! मां ! आप दया करें!"

भरत जी फूट-फूट कर रो रहे हैं। कौन है जो स्थिर है ? न कोई ! वे सारे शास्त्री और विद्वान जानकी के सम्मुख दण्डवत भूमि पर पड़े हैं। मानों कह रहे हों—मर्यादा पुरुषोत्तम ही सत्य थे ! हमारे अपराध क्षमा करो, माँ !

जानकी जी भयभीत हैं। वे आचार्यों की ओर देखती हैं। मानों पूछ रही हों कि क्या एक परित्यक्ता वस्त्र ग्रहण करने की अधिकारिणी है। भय, विषाद, संकोच और अनिर्णय का मिला भाव उनके मुख मण्डल पर स्पष्ट है।

"माँ ! आप ही वस्त्र ग्रहण करने की अधिकारिणी हैं। वेद एवं शास्त्रों का यही मत है।" वे कहते हैं।

जानकी जी वस्त्र ग्रहण करती हैं। उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति जी उनको घेर लेती हैं। जानकी मौन, एक टक जल धाराओं को देखती हैं जिनमें उनका सर्वस्व लोप हो

चुका है। फिर वे यज्ञ कुटी में जाती है जहाँ बल्कल वस्त्र का त्याग कर श्वेतवस्त्र (जो सात्विकता का प्रतीक है) धारण करती हैं। उपरान्त आचार्य पुनः यज्ञ शाला में आते हैं। वेदोच्चारण द्वारा जानकी जी द्वारा यज्ञ सम्पादित होता है। वे धरती में समाने को तैयार होती हैं। प्रजा एक बार फिर तड़प उठती है ! जानकी ! तूने क्या पाया ? चौदह वर्ष का वनवास लंका की घोर यातनायें ! पुनः परित्यक्ता, तापस वल्कलधारी जीवन ! और अब ! सभी सुखों से शून्य होकर जा रही है धरती समाने ! जानकी ! इस निष्ठुर समाज ने तुझे क्या दिया। अब तू धरती के भीतर गुफा में, सभी सुखों का त्याग कर मात्र तपस्या करेगी। अपने बालकों को भी तो......

बेचारे लव-कुश ! पिता गये ! मातृ सुख से विहीन हो गये ! मर्यादा की बलि-वेदी पर......

जानकी जी बाहर आई हैं। लव-कुश दूर उदास खड़े देख रहे हैं। महर्षि बाल्मीकि उनके साथ हैं। जानकी जी सरयु के तट पर आती हैं। माँ सरयु की पूजा करती हैं। पुष्पांजलि अर्पित करती हैं आंसुओं से भीगी हुई ! सरयु शान्त हैं। स्थिर है ! कैसा रहस्यमयी मौन है !

जानकी जी, मांडवी, उर्मिला और श्रुतकीर्ति के साथ जा रही हैं। लक्ष्मण जी के धैर्य के बांध टूट गये हैं। लव और कुश को सीने से भींचकर पागलों की तरह वे कभी सरयु को और कभी ओझल होती जानकी को देख रहे हैं ढाहें मारकर रोते हुये।

॥ नारायण हरि ॥

सरयु के तट

निर्वस्त्र देह सरयु के उस पार प्रकट हुई है। सन्यासियों ने गेरुआ वस्त्र से उसे ढक लिया है। सारे अतीत को जलाकर, नाते-रिश्ते जलाकर एक चिता में स्वयं भी जलकर; जल की धाराओं से नित्य स्वरूप प्रकट हुआ है। ज्वालाओं के वस्त्र से सुशोभित है। उसके अतीत की चर्चा अब नहीं कर सकते। अतीत की चर्चा महापाप है। उसका न कोई अतीत है-वह सदा वर्तमान है। अग्निवेश नित्य पुरुष है वह। चल दिया है जीवन की पद चिन्ह विहीन राहों पर। नितान्त अकेला........

कभी तीन जोड़ी पांव, चौदह वर्ष के वनवास को चले थे। संग धनुष-बाण चले थे

आज सिर्फ एक जोड़ी पांव हैं; न धनुष है न वाण है-"एको ब्रम्ह द्वितीयो नास्ति" सब में एक ईश्वर ही है। यही मन्त्र है-

न मित्र–शत्रु का भेद है। न मेरे तेरे की बात है– न इच्छा है, न चाह है-बस एक प्रभु की राह है.........

उस पार जाता सन्यासी ! उस ओर जा रही धरती में समाने एक नित्य तपस्विनी !

इस पार घाट पर भोले बालकों को सोने से भीचे फफक-फफक कर रोता निष्पाप, भक्त हृदय, सर्मपित लक्ष्मण– हे राम–

सरयु के तट; युग तुझे याद कर रोते रहे हैं ! रोते रहेगें–तेरी मर्यादाओं कोदुहराते रहेगें –मर्यादा पुरुषोत्तम--तू ही सत्य है ! हे घनश्याम–हे नीलाभ दीप्तियों के स्वामी– शत-शत प्रणाम !

श्रोता मित्र ! तुमने पूछा है कि तू कौन है ? रे सन्यासी ? मात्र परिचय है, न कोई सन्यासी--बस एक युगान्तर पापी ! जब भी सरयु के तट पाता हूँ शरीरी अथवा अशरीरी, उन्हीं के चरणों में बरस जाता हूँ ! युग खो देते हैं जब श्री राम–फिर रुप भरता हूँ–अति पावन कथा सुनाता, पुनः उन्हीं कथा अन्तरालों में खो जाता हूँ ! जन–जन को प्रणाम ! हे राम ! हे राम !!

पाठकों से विनम्र अनुरोध

हम आप सबसे सभी प्रकार का सहयोग चाहते हैं। जिससे एक पुस्तक के रूप में प्रत्येक घर में हम पहुँच सकें। उसके लिए हमें आपके सभी प्रकार के सहयोग की परम आवश्यकता है। आप ये न भूलें कि हमारे पास न तो मिडिलिस्ट का गोल्ड है, और न पूँजी पति सरकारों के डालर। हमारे सहयोगी, संगी साथी, आप सब हैं। इस महा अभियान में दिल खोलकर दान दें तथा इन पुस्तकों को मंगवा कर घर-घर तक पहुँचाने के इस महान यज्ञ में हमारे साथी बनें।

राजनीति के हाथों में हमारी अपनी धार्मिक सांस्कृतिक, और सामाजिक धरोहर को किस प्रकार पिछले चालिस सालों में हम सब लुटते देखते रहे हैं। आप उस पर भी विचार करें। क्या हिन्दूवादी राजनैतिक संगठनों के हाथ में भारत और भारती सुरक्षित है? अथवा जिन हाथों ने, बारह सौ साल लम्बी गुलामी में भी, इस धर्म और संस्कृति को मिटने नहीं दिया, उन्हीं हाथों में इस धरोहर को सुरक्षित रखा जाय ? वे हाथ सन्यासी

के हो हैं। गुलामों के लम्बे अन्तरालों में यदि हम बहुमत में रहे, और सुरक्षित रहे तो इन्हीं तपस्वियों के कारण। हम अपने आप से ये भी पूछ लें कि हमने इन हाथों को कितनी शक्ति और सामर्थ्य प्रदान की ? क्या इन हाथों को अत्यधिक सशक्त और मजबूत नहीं होना चाहिए ?

हमारे हाथों की शक्ति और मजबूती आप पर निर्भर है। यदि धन हमारे पास होता तो आज आप को ये सब घुटन भी न होती। कृपया हमारे साथ जुड़े और संस्कृति की रक्षा करें।

आप अपना सभी प्रकार का सहयोग हमें प्रदान करें ! धन के द्वारा, मित्र मण्डलियाँ बनाकर, घर-घर जन, जागरण करें। जन जागरण में लगी इस आश्रम की मासिक पत्रिका "आदि भारती" के आजीवन तथा वार्षिक सदस्य बनाकर। जिससे हम एक मासिक पत्रिका तक ही सीमित न रहें, वरन् सारे देश में समाचार पत्र और पत्रिकाओं का संचालन करके महा विनाश को जा रही जाति-धर्म-संस्कृति को बचा सकें तथा विश्व में सम्मानित करा सकें।

विश्व भारती संस्था के उद्देश्य

★ न्याय समता ० एक राष्ट्र-एक कानून ० राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को पुष्ट करना।

★ साम्प्रदायिक सद्भाव तथा एकत्व की भावनाओं को जन-जन तक पहुँचाना।

★ भारतीय धर्म, संस्कृति एवं मानवता का स्पष्ट ज्ञान जन-सामान्य तक पहुँचाना।

★ मानवीय मूल्यों की पुनः स्थापना। प्रत्येक मनुष्य का सर्वतोमुखी उत्थान।

★ साम्प्रदायिक उन्माद, भेद-भाव, छुआ-छूत, भ्रष्टाचार, हिंसा, दहेज बाल-विवाह, नशा आदि के विरुद्ध जन-मानस को शिक्षित एवं सतर्क करना।

★ नारी को पुरुष की भाँति समान अधिकार। बहुपत्नी प्रथा को समाप्त कराना।

★ शिक्षा पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन।

★ भरत की संस्कृति के उपासकों को एकता के सूत्र में बांधना।

★ मनुष्य को मनुष्य के स्तर पर जीने की कला सिखाकर प्राणिमात्र के लिए वरदान बनाना।

★ योग, तप एवं साधना के गूढ़ ज्ञान को व्यावहारिक बनाकर जन-जन के जीवन को अमृतमय बनाना।

कृपया सभी प्रकार का धन क्रास ड्राफ्ट अथवा क्रास चेक के द्वारा ही भेजें। पोस्टल आर्डर तथा मनी आर्डर न भेजें, ड्राफ्ट अथवा चेक क्रास या एकाउण्ट पेयी हों जो "श्री स्वामी सनातन श्री" के नाम पर ही देय हों।

आदि भारती मासिक पत्रिका की वार्षिक सदस्यता — १०१ रु०

आजीवन सदस्यता — ११०० रु०

रजि०-६५/प्रेस-८८

राष्ट्र का पूर्व नाम
भरत-खण्ड

राष्ट्र का वर्तमान नाम
भारत-वर्ष

गर्व से कहो

हम भारत हैं

भरत=भरण पोषण करने वाले ! परमेश्वर

राष्ट्र का नाम भारत-वर्ष

नागरिक की संज्ञा:- भारत

भारत-ईश्वर के पुत्र मसीहा, अवतार !

संस्कृति:- भारतीय

भरत-खण्ड=परमेश्वर का देश !

भारत वर्ष भरत-खण्ड

भाषा:- भारती (हिन्दी)

प्रकाशक- श्री सनातन पीठ प्रकाशन
मुद्रक:- समुद्रक प्रिन्टर्स

श्री सनातन आश्रम
कुर्सी रोड, लखनऊ-७
फोन न० ७३७६७